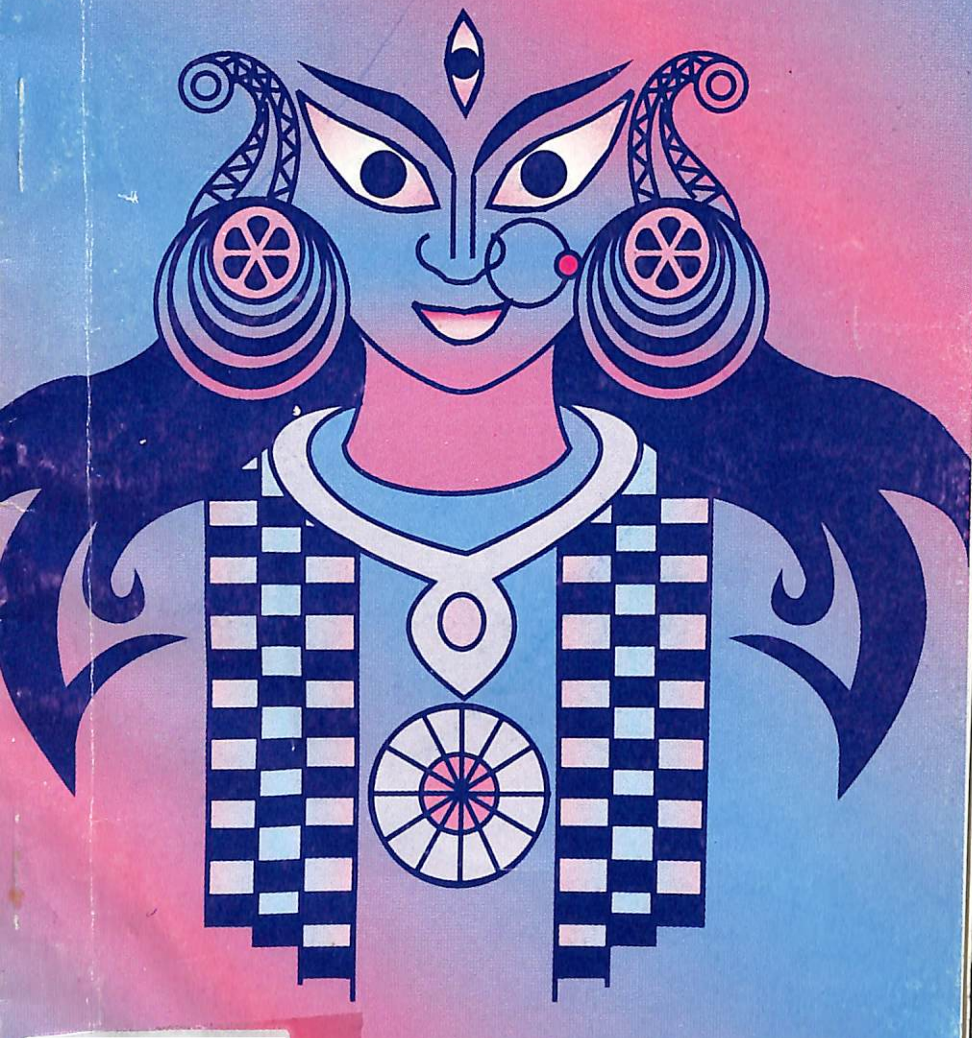
एकजटातारासाधनतन्त्रम्

हिन्दी टीका सहित



एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

३३९

एकजटातारासाधनतन्त्रम्

(हिन्दी टीका सहित)

अनुवादक

श्री एस.एन. खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 335263, 333431

प्रथम संस्करण 2002 ई.
मूल्य : 30.00

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा विद्याभवन
चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष : 320404

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान
38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 3956391

मुद्रक
महावीर प्रेस, वाराणसी

निवेदन

एकजटा तारादेवी दशमहाविद्यान्तर्गत द्वितीया महाविद्या के रूप में स्थित हैं। यह सिद्धविद्या है। इनकी आराधना में नक्षत्रविचार, सिद्ध्यादि विचार अप्रयोजनीय है। यह त्वरित सिद्धिदात्री के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके अनेक नाम हैं। वाक्शक्ति प्रदात्री होकर यही नीलसरस्वती हैं। भवभ्रम से त्राण दिलाने में तत्पर यही तारा हैं। एकजटा, उग्रतारा, महोग्रतारा, तारिणी की संज्ञा से अभिहित होकर यह द्वितीय महाविद्या ही नाना रूप में प्रतिभात हो रही हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ इन्हीं एकजटा की साधना के विभिन्न मन्त्रों तथा प्रक्रिया समूह का द्योतन कराता है । यह वास्तव में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ न होकर विभिन्न तन्त्रों में अंकित इन्हीं द्वितीया महाविद्या की अर्चना-पद्धति का संग्रह होने के कारण अत्यन्त साधकोपयोगी प्रतीत हुआ है। साधकगण अपने संस्कार तथा रुचि के अनुसार इसमें अंकित विभिन्न प्रक्रियाओं में-से अपने लिये उपयोगी विधि का चयन कर सकते हैं।

महाशिवरात्रि, २००१ ई.

निवेदक

एस. एन. खण्डेलवाल

विषय-सूची

❋ ❋ ❋

।। श्रीः ।।

एकजटातारासाधनतन्त्रम्

मत्स्यसूक्ते

अथ मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि तारिण्याः सर्वसिद्धिदान् ।
येषां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तस्तु साधकः ।।१।।

कवितां लभते शुद्धामनर्गलविजृम्भिणीम् ।
पाण्डित्यं सर्वशास्त्रेषु धनैर्धनपतिर्भवेत् ।।२।।

राजद्वारे सभायाञ्च विवादे व्यवहारके ।
सर्वत्र जयमाप्नोति बृहस्पतिरिवापरः ।।३।।

अब ताराविद्या सम्बन्धित समस्त सिद्धिप्रदायक मन्त्रसमूह का वर्णन किया जाता है। इसके ज्ञान से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है। अनर्गल प्रलाप करने वाले विशुद्ध कविता की प्राप्ति करते हैं। सभी शास्त्रों का पाण्डित्य प्राप्त होता है। धन में कुबेर के समान हो जाते हैं। सभा में, विवाद में, राजद्वार में तथा वाणिज्य आदि कार्य में जय प्राप्त करते हैं और बृहस्पति के समान हो जाते हैं।।१-३।।

मायाबीजं समुद्धृत्य तकारं वह्निसंयुतम् ।
मायाबिन्द्वीश्वरयुतं द्वितीयं बीजमुद्धृतम् ।।४।।

कूर्च्चबीजं तृतीयं स्यात् फट्कारस्तदनन्तरम् ।
सम्पूर्णसिद्धमन्त्रस्तु रश्मिपञ्चकसंयुतः ।।५।।

रश्मिपञ्चकं वर्णपञ्चकमित्यर्थः ।

लीलया वाक्प्रदा चेति तेन नीलसरस्वती ।
तारकत्वात् सदा तारा सुखमोक्षप्रदायिनी ।।

उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्त्तिता ।।६।।

मायाबीज (ह्रीं), 'त'कार में र, ई एवं चन्द्रबिन्दु मिलाकर (त्रीं), कूर्चबीज (हुं) तदनन्तर फट् लगाकर रश्मिपञ्चक (वर्णपञ्चक) युक्त होकर 'ह्रीं त्रीं हुं फट्' मन्त्र का उद्धार होता है।

लीला के द्वारा वाक्प्रदा होने से नीलसरस्वती कही जाती हैं, सुख एवं मोक्ष प्रदान करके सदैव तारक होने के कारण तारा कही जाती हैं, उग्र आपत्ति का निवारण करने के कारण इन्हें उग्रतारा कहा जाता है।।४-६।।

तारार्णवे

वशिष्ठाराधिता विद्या न तु शीघ्रफला यतः ।
अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः ।।७।।

ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्यचित् ।
चन्द्रबीजं त्रयान्तस्थबीजोपरि नियोजितम् ।।८।।

ततः प्रभृति विद्येयं वधूरिव यशस्विनी ।
फलिनी सर्वविद्यानां जयिनी जयकाङ्क्षिणाम् ।।९।।

विषक्षयकरी विद्या अमृतत्वप्रदायिनी ।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते ।।१०।।

वशिष्ठमुनि दीर्घकाल तक तारादेवी की उपासना करने पर भी फल प्राप्त न कर सके। इससे उन्होंने क्रोधित होकर देवी को दारुण शाप दे दिया। तभी से तारिणी देवी किसी को भी फल देने में असमर्थ हो गईं। इसके अनन्तर वशिष्ठमुनि ने शापोद्धार किया। उसका मन्त्र कहा जा रहा है — 'त्रीं' बीज के साथ 'स' का योग करने से 'ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' से उन्होंने तारिणी देवी की आराधना की व्यवस्था की। इससे तारिणी देवी वधू के समान यशस्विनी हो गई। यह विद्या सभी विद्याओं का फल देने वाली है। जयार्थी साधकों के लिये जय देने वाली, विष से पीड़ित के लिये विषहारिणी तथा मृत्यु का नाश करने वाली है। इसके जानने मात्र से साधक पृथ्वी पर विजयी हो जाता है।।७-१०।।

एकवीराकल्पे

लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्चबीजं तथा हि फट् ।
एवं पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी ।।११।।
वधूबीजं स्त्रीङ्कारः।

विश्वसारे

सतरीञ्च महेशानि वधूबीजं प्रकीर्तितम् ।।१२।।

एकवीराकल्पे

षोडशव्यञ्जनं वह्निर्वामाक्षिबिन्दुभूषितम् ।
चन्द्रबीजसमारूढं वधूबीजमिदं स्मृतम् ।।१३।।
चन्द्रः सकारः ।

मायाबीज, वधूबीज, कूर्चबीज तथा फट् अर्थात् 'ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' रूपी पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूत का प्रकाशन करने वाली है। तन्त्र कहते हैं कि हे महेशानि ! 'स' 'त' तथा 'र' इन तीन वर्ण में ईकार तथा बिन्दु को जोड़ने से वधूबीज 'स्त्री' होता है। अन्य मत के अनुसार षोडश व्यञ्जन वर्ण 'त' के पहले चन्द्रबीज (स) का योग करके 'र', 'ई' तथा बिन्दु लगाने से 'स्त्रीं' (वधूबीज) होता है।।११-१३।।

नीलतन्त्रे

ताराद्या पञ्चवर्णेयं श्रीमन्नीलसरस्वती ।
सर्वभाषामयी शुद्धा सर्वाम्नायैर्नमस्कृता ।।१४।।

"ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्" रूपी पञ्चाक्षर मन्त्र अति शुद्ध है। यह नीलसरस्वती का मन्त्र है। इससे सभी भाषाओं पर अधिकार प्राप्त होता है। यह सभी आम्नाय (महादेव के सभी मुख) से प्रशंसित है।।१४।।

तारार्णवेऽपि

अनुत्तरं समुद्धृत्य मायोत्तरमतः परम् ।
पपञ्चमसमारूढं पञ्चरश्मिप्रकीर्तितम् ।।१५।।

जीवनीमध्यगा पञ्चादेकाक्षी तदनन्तरम् ।
उग्रवर्णं ततो दद्यादस्त्रं देवि प्रकाशितम् ।।१६।।

एकाक्षी स्त्रीं तेन सर्वत्र शापोद्धारः ।।१७।।

जीवनीमध्यगा माया ।

अनुत्तर से परमाणु, तदनन्तर परमाणु के पश्चात् 'अ' की सृष्टि होती है। अतः अनुत्तर = अ। मायोत्तर अर्थात् माया 'ई' के पश्चात् का वर्ण 'उ' एवं पपञ्चम = म। अर्थात् अ, उ, म तथा चन्द्रबिन्दु के संयोग से जो बीज बनता है, उसे पञ्चरश्मि कहते हैं। जीवनमध्यगा (मायाबीज), एकाक्षी (वधूबीज) उग्रवर्ण (कूर्च्चबीज) तदनन्तर 'फट्'। इस प्रकार मन्त्र होने से शापोद्धार हो जाता है। अर्थात् — 'ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्'।।१५-१७।।

पञ्चाक्षरीमधिकृत्य तन्त्रे

श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी ।
एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदा ।।१८।।

वाग्भवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी।
वितारैकजटा चैषा महामुक्तिकरी सताम्।।१९।।

तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती।
कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता।।२०।।

एकजटा का प्रणवविहीन मन्त्र 'ह्रीं स्त्रीं हुं' साधुजन के लिए मुक्तिदायक है। ऊँ तथा फट् से रहित यह तीन अक्षरों वाला त्र्यक्षर मन्त्र ही 'महानीलसरस्वती' कहलाता है। यह तारादेवी का कुल्लुका है। यह सभी तन्त्रों में गुप्त है। 'जीवनमध्यगा' ऊपर श्लोक में कहा गया है, उसका तात्पर्य है मायाबीज 'ह्रीं'।।१८-२०।।

यथासङ्केतचन्द्रोदये

हृल्लेखा भुवनेश्वरी च भुवना देवीश्वरी ह्रीं।
महामाया जीवनमध्यगा त्रिजगतां धात्री परेशी परा।। इति।
एषा क्रमागता प्राप्ता मतभेदादनेकधा।।२१।।
एषा पञ्चाक्षरी।

इस विषय में कहा गया है कि तारादेवी का पञ्चाक्षर मन्त्र मतभेद से अनेक प्रकार का है।।२१।।

पञ्चाक्षरी एकजटा ताराभावे महेश्वरी।
ताराद्या तु भवेद्देवी श्रीमन्नीलसरस्वती।।२२।।

उग्रतारा त्र्यक्षरी च महानीलसरस्वती।
अन्यासां विद्यानां एकजटैव देवता प्रकृतित्वात्।।२३।।

अतः यह महेश्वरी पञ्चाक्षरी विद्या प्रणव रहित होकर एकजटा हैं। प्रणव युक्त होकर उग्रतारा हो जाती हैं। तीन अक्षरों वाली होकर महानीलसरस्वती कहलाती हैं। अन्य सभी विद्याओं को एक जटा कहते हैं; क्योंकि एकजटा ही देवताओं की प्रकृति है। ह्रीं हृल्लेखा हैं। यह भुवनेश्वरी, भुवनादेवी, ईश्वरी हैं। ये ही महामाया तथा जीवनमध्यगा (ह्री) हैं। ये तीनों जगत् को धारण करने वाली, परापरेशी हैं। नाना मतों से नाना प्रकार की हैं। एकजटा का मन्त्र है — 'ह्रीं स्त्रीं हुं फट्'। नीलसरस्वती का मन्त्र है —'ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्'। उग्रतारा तथा

महानीलसरस्वती का मन्त्र है — 'ह्रीं स्त्रीं हुं फट्'। अन्य मन्त्रों की देवता एकजटा हैं। यहाँ वे ही प्रकृति हैं।।२२-२३।।

एकलिङ्गं श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे।
शवस्योपरि मुण्डे वा जले वाकण्ठपूरिते।।२४।।
सङ्ग्रामभूमौ योनौ वा स्थले वा विजने वने।
तत्रस्थः साधयेद् योगी विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम्।।२५।।
पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते।
तदेकलिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा।।२६।।

एकलिङ्ग शिवमन्दिर में, श्मशान में, शून्यगृह में, चौराहे पर, शवासन पर, मुण्डासन पर, गले तक जल में खड़े होकर, वनभूमि में, योनिमण्डल में अथवा विजन वन में उपविष्ट होकर साधक तारिणीं देवी की साधना करे। जहाँ पाँच कोश क्षेत्र के मध्य में एकमात्र एक ही शिवलिङ्ग हो, वही एकलिङ्ग है। इसके समक्ष देवाराधन करने पर अनायास मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है।।२४-२६।।

अन्यत्रापि

उज्जरे पर्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे।
देवागारे च शून्ये च निर्जनैकान्तवेश्मनि।।२७।।

जनशून्य मकान, पर्वत, निर्जन-स्थल, चौराहा, जनहीन देवालय तथा शून्यालय में ताराविद्या की साधना करे।।२७।।

वीरतन्त्रेऽपि

शून्यागारे श्मशाने जपति जडस्त्वेकलिङ्गे तडागे
गङ्गागर्भे गिरौ वा शुचिरमलमतिः सर्वदा भक्तियुक्तः।
विद्यां श्रीनीलवान्याभुवनजनपतिः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता
देहान्ते योगिमुख्यः परमसुखप्रदं ब्रह्मनिर्वाणमेति।।२८।।

यदि साधक शुद्ध बुद्धि से, भक्ति से समन्वित तथा शुद्धचित्त होकर शून्य घर में, श्मशानभूमि में, एकलिङ्ग शिवालय में, तडाग में (कूआ में), गंगा में अथवा पर्वत पर बैठकर श्रीनीलसरस्वती के महामन्त्र का जप करे, तो वह योगी

श्रेष्ठ त्रिभुवन-स्वामी तथा सर्वशास्त्रवेत्ता होकर परलोक में ब्रह्मनिर्वाण प्राप्त करता है।।२८।।

भैरवतन्त्रे

ताराभेदैस्त्रिभिः पीत्वा मायया क्षालयेत् करम् ।
स्त्रीं हुमोष्ठौ द्विसन्मृज्य फट्कारैः क्षालयेत् करम् ।।२९।।

आस्यनासेक्षणदृशौ शास्त्रनाभिवक्षःशिरोभुजान् ।
वैरोचनादिभिः स्पृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३०।।

आचम्य भैरवो भूत्वा वत्सरात्तां प्रपश्यति ।
ताराभेदैरिति उग्रतारैकजटानीलसरस्वतीभेदैः ।।३१।।

वैरोचनशङ्खपाण्डुरपद्मनाभामिताभनामकमामकतारकपद्मान्तकयमान्तक-विघ्नान्तकनरान्तकाः। सचतुर्थीप्रणवादिनमोन्तकाः।।३२।।

निम्नाङ्कित प्रकार से आचमन करने वाला साधक पाप से छुटकारा पा जाता है। एक वर्ष पर्यन्त ऐसा आचमन करके साधक स्वयं भैरवस्वरूप होकर तारा का साक्षात्कार पा लेता है। अब तारादेवी की आचमन प्रणाली कहते हैं। उग्रतारा का मन्त्र, एकजटामन्त्र तथा नीलसरस्वती का मन्त्र अर्थात् —

'ह्रीं श्रीं हुं ह्रीं श्रीं हुं फट् ह्रीं श्री हुं'

अथवा

'ऊँ उग्रतारायै नमः, ऊँ एकजटायै नमः, ऊँ नीलसरस्वत्यै नमः' इस मन्त्र से तीन बार आचमनीय जल पी करके ह्रीं' मन्त्र से हाथ धोना चाहिए। 'स्त्रीं हुं' मन्त्र से ओठों को धोना चाहिए तथा 'फट्' मन्त्र से पुनः हाथ धोकर 'ऊँ वैरोचनाय नमः' से मुख, 'ऊँ शङ्खाय नमः' मन्त्र द्वारा दाहिनी नासिका, 'ऊँ पाण्डुराय नमः' मन्त्र से वाम नासिका, 'ऊँ पद्मनाभाय नमः' मन्त्र से दाहिना नेत्र, 'ऊँ अमिताभाय नमः' से वाम नेत्र, 'ऊँ नामकाय नमः' मन्त्र से दाहिना कान, 'ऊँ मामकाय नमः' से वाम कान, 'ऊँ तारकाय नमः' मन्त्र से नाभि, 'ऊँ पद्मान्तकाय नमः' मन्त्र से वक्षःस्थल, 'ऊँ यमान्तकाय नमः' मन्त्र से मस्तक, 'ऊँ विघ्नान्तकाय नमः' से दाहिना कन्धा तथा 'ऊँ नरान्तकाय नमः' से वाम कन्धा का स्पर्श करे।।२९-३२।।

अथास्याः पूजाप्रयोगः

प्रातःकृत्यादि स्नानान्तं समाप्य यागस्थानं गत्वा 'ऊँ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेण जलमधिष्ठाय तज्जलं पूजार्थं विधाय किञ्चिदन्यजले निःक्षिप्य तेनैव वारिणा 'ऊँ ह्रीं विशुद्धसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' इति हस्तौ पादौ च प्रक्षाल्य कुलकुशान् सुवर्णरजतरूपान् यथाक्रमः तर्जन्यनामासु दत्त्वा 'ऊँ ह्रीं स्वाहा' इत्याचम्य पीठं चिन्तयेत्।।३३।।

तारादेवी की पूजापद्धति इस प्रकार है। प्रथमतः स्नान पर्यन्त प्रातःकृत्य सम्पन्न करके पूजास्थान में आकर वहाँ 'ऊँ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' कहकर जल का शोधन करते हुये उसे पूजा के लिए रक्खे। तदनन्तर इस जल में से कुछ जल को अन्य पात्र में रक्खे, जल में डाले और अब इस जल द्वारा 'ऊँ ह्रीं विशुद्धसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' का उच्चारण करते हुये हाथ तथा पैर को धोना चाहिये। तदनन्तर सुर्वण तथा रजत के समान कुलकुश को तर्जनी एवं अनामिका में धारण करके 'ऊँ ह्रीं स्वाहा' मन्त्र से आचमन करे और पीठ का चिन्तन करे।।३३।।

कुमारीतन्त्रे

स्नानाच्च तीर उत्थाय वस्त्रे द्वे परिधाय च।
तिलकं कुलवत् कृत्वा आचम्यैवं सुरेश्वरि।।३४।।

जलशङ्खं करे कृत्वा गत्वा द्वारि महेश्वरि।
क्षालयेद्धस्तपादौ च वक्ष्यमाणेन वर्त्मना।।३५।।

अन्य मतानुसार स्नान के पश्चात् नदी के किनारे उत्तरीय तथा परिधेय वस्त्र धारण करके कौलिक नियमानुसार त्रिकोणाकृति तिलक लगावे तथा आचमन करके हाथ में जल से भरा शंख लेकर साधना-स्थल के द्वार पर आकर हाथ और पैर धोना चाहिये।।३४-३५।।

मत्स्यसूक्ते

तारं वज्रोदकं हुं फट् स्वाहा जलमधीरितम्।।३६।।

तारं लज्जाविशुद्धान्ते सर्वपापानि चैव हि।
शमयान्ते त्वशेषान्ते विकल्पपदमुच्चरेत्।।३७।।

अपनयान्ते वर्म फट् स्वाहा पदविशुद्धये ।
तारं माया वह्निजाया च तथा चाचमने मनुः ।।३८।।

कुलकुशाश्च

सुवर्णं रजतञ्चैव जपपूजादिकर्मसु ।
कुशकार्यकरं प्रोक्तं न त्वन्याः कुशाः कुशाः ।
तर्जन्या रजतं धार्यं स्वर्णं धार्यमनामया ।।३९।।

अन्यत्र कहा गया है कि 'ऊँ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र द्वारा जल-शोधन करना चाहिये। 'ऊँ ह्रीं विशुद्धसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र द्वारा उस जल से पादप्रक्षालन करे। 'ऊँ ह्रीं स्वाहा' द्वारा आचमन करना चाहिये। तन्त्र के अनुसार सोना तथा चाँदी ही कुलकुश है। जंगल की वनस्पति वाला कुश कदापि कुलकुश नहीं है। तर्जनी अंगुली में चाँदी तथा अनामिका में सुवर्ण धारण करके तान्त्रिक कार्य करे।।३६-३९।।

पीठचिन्तनम्

श्मशानं तत्र सञ्चिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत् ।
तन्मूले मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम् ।।४०।।

नानालङ्कारभूषाढ्यं मुनिदेवैश्च भूषितम् ।
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमादभानाभिरन्ततः ।।४१।।

चतुर्दिक्षु शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभूषितम् ।
तन्मध्ये भावयेद्देवीं यथोक्तध्यानयोगतः ।।४२।।

इसके बाद पीठ का चिन्तन करना चाहिये। प्रथमतः श्मशानभूमि की भावना करके वहाँ कल्पवृक्ष का चिन्तन करे। उस वृक्ष के नीचे नाना मणि से युक्त अलंकारों से युक्त मणिपीठ मुनिगण तथा सुरगणों से घिरा हुआ है। उसके प्रान्तभाग में, श्मशान में, शिवा समूह मांस तथा अस्थि के लोभ से आनन्द से भरकर विचरण कर रहा है। चारों ओर शवमुण्ड तथा चिता के अंगार फैले हुये हैं। इस पीठ के बीच देवी का चिन्तन करे।।४०-४२।।

इति ध्यात्वा 'ऊँ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इति शिखां बध्नीयात्।

'ऊँ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इति जलसेकाद् भूमिं शोधयेत्।

'ऊँ सर्वान् विघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा' इति नाराचमुद्रया अक्षतप्रक्षेपेण त्रिविधविघ्नान् दिव्यान्तरीक्षभौमानुत्सारयेत्।

'ऊँ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहा' इति।

भूमिमभिमन्त्र्य तत्र कम्बलकोमलविष्टराद्यासनानि यथासाधनान्यास्तीर्य 'ऊँ आः सुरेखे वज्ररथे हुं फट् स्वाहा' इति गन्धपुष्पादिना तदभ्यर्च्य स्वस्तिकादिक्रमेण तत्रोपविशेत्।।४३।।

इस प्रकार से पीठचिन्तन करके 'ऊँ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' का उच्चारण करके शिखा बाँधे। तदनन्तर 'ऊँ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' मन्त्र द्वारा जल छिड़कते हुये भूमि शोधन करना चाहिये। तत्पश्चात् नाराचमुद्रा से चावल के दाने लेकर 'ऊँ सर्वान् विघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र पढ़ते हुये चावल छिड़के जिससे दिव्य, अन्तरीक्ष एवं भौम विघ्न समाप्त हो जाते हैं। इसके अनन्तर 'ऊँ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहा' कहकर भूमि को अभिमन्त्रित करे। वहाँ कम्बलासन, मृदु कोमलासन, कुशा से बने आसन आदि रखकर 'ऊँ आः सुरेखे वज्ररथे हुं फट् स्वाहा' कहकर उस आसन पर स्वस्तिकादि क्रम से बैठे।।४३।।

मत्स्यसूक्ते

मृदुकोमलमासीनश्चान्येषु कम्बलेषु च।
विष्ठरं वा समासीनः साधयेत् सिद्धिमुत्तमम्।।४४।।

कोमलासन, कम्बलासन, विष्ठरासन (कुशासन), अथवा किसी विशुद्ध आसन पर बैठकर देवाराधन करना चाहिये।।४४।।

पञ्चवर्षान्तरं यावन्मृतबालमचूडकम्।
षण्मासानन्तरं यावद्दशमासाच्च पूर्वतः।।४५।।

गर्भच्युतं मृतं बालं गर्भाष्टमपुरःसरम्।
एतत् कोमलमित्याहुर्विष्टरेषु कुशेषु वा।।४६।।

पाँच वर्ष तक का ऐसा मृत बालक, जिसका मुण्डन संस्कार न हुआ हो अथवा छः से दस मास के भीतर के गर्भच्युत बालक को ही कोमलासन कहा गया है। कुश का बना कुशासन ही विष्टरासन है।।४५-४६।।

नीलतन्त्रे

निवृत्तचूडको बालो हीनोपनयनः पुमान्।
यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं विदुः ।।४७।।

जिस बच्चे का मुण्डन हो भी चुका हो, यदि वह पाँच वर्ष के करीब की उम्र में मर जाता है, तब वह भी कोमलासन ही है।।४७।।

एकहस्तं द्विहस्तं वा चतुरस्रं समन्ततः।
विशुद्धे आसने कुर्यात् संस्कारं पूजनं ततः ।।४८।।

कृष्णसारव्याघ्राद्यजिनमप्यादानम्। तदुक्तं तन्त्रे– कृष्णसारद्वीपिचर्म-चूडेत्यादि। विष्टरेष्वित्यादि कुशपत्रशतेन वटुकं निर्माय तत्र शवप्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।।४९।।

आसन का माप एक हाथ या दो हाथ हो। यह चौकोर हो। विशुद्ध आसन पर बैठकर जप पूजा कार्य करना चाहिये। कृष्णमृग चर्म, व्याघ्र चर्म, मृग चर्म का आसन पूजा में विहित है। विष्ठरासन के स्थान पर १०० कुशा से बालकाकृति बनाये। उसमें शव प्राण की प्रतिष्ठा कर अर्थात् उस बालाकृति को शव मानकर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करके उस पर बैठे।।४८-४९।।

ऊँकारं आः सुरेखे वज्ररेखे ततः परम्।
हुं फट् स्वाहेति कुर्यात्तु मण्डलन्तु शवासने ।।५०।।
वीरासनेनोपविश्य सम्पूज्यासनमेव च।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ।।५१।।

ततः 'ऊँ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' इति वस्त्रान्ते रक्षाग्रन्थिं बन्धयेत्। 'ऊँ आः हुं फट् स्वाहा' इति व्यापकतया कायवाक्चित्ते' शोधयेत् ।।५२।।

ऊँ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय।
ऊँ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते।
पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहेति पुष्पमभिमन्त्रयेत् ।।५३।।

इसके बाद उस शवासन पर 'ऊँ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र कहते हुये चतुरस्र चतुर्द्वारयुक्त मण्डल का अंकन करके आसन की पूजा करके

उस पर बैठना चाहिये। तदनन्तर 'ऊँ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' द्वारा अपने वस्त्र में रक्षाग्रंथि बन्धन करे। तत्पश्चात् 'ऊँ आः हुं फट् स्वाहा' द्वारा देह, वाणी तथा चित्त का शोधन करे। इसके पश्चात् 'ऊँ पुष्पकेतु राजाहर्त्ते शताय सम्यक् सम्बन्धाय ऊँ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्र से पुष्पों को अभिमन्त्रित करे।।५०-५३।।

ततः सुवर्णादिपीठे गोरोचनाकुङ्कुमादिलिप्ते 'ऊँ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेणाधोमुखत्रिकोणगर्भाष्टदलपद्मवृत्तं चतुरस्त्रं यन्त्रमुद्धरेत्। पद्मस्य पूर्वादिदले मन्त्राक्षराणि लिखेत्।।५४।।

अब सुवर्ण आदि पीठ पर गोरोचन अथवा कुङ्कुम द्वारा लेपन करके 'ऊँ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से अधोमुखी त्रिकोण में अष्टदल पद्म बनाये। उसके बाहर वृत्त, चतुरस्त्र तथा चतुर्बाहुयुक्त यन्त्र का अङ्कन करे। यन्त्र के पूर्वादिदल में मन्त्राक्षर लिखना चाहिए।।५४।।

कुलचूडामणौ

ततः कुलरसेनैव पीठं निर्माय यत्नतः।
आःसुरेखे वज्ररेखे ऊँ हुं फट् स्वाहा समन्वितम्।।५५।।
मन्त्रेणानेन संलिख्य वसुपत्रं मनोरमम्।
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत्।।५६।।
कुलरसेन स्वयम्भुरसेन।

सुवर्णादि पीठ पर कुलरस (ऋतुमती स्त्री की योनि से क्षरित रक्त) द्वारा 'ऊँ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से मनोरम यन्त्र का अंकन करे। यन्त्र में चतुरस्त्र आदि सबका अंकन होना चाहिए।।५५-५६।।

वर्णलेखनप्रकारमाह फेत्कारिये

सयोनिं चन्दनेनाष्टदलं वृत्तं लिखेत्ततः।
मृद्वासनं समासाद्य मायां पूर्वदले लिखेत्।।५७।।
मध्यबीजं द्वितीये फमुत्तरे पश्चिमे तु टम्।
मध्ये बीजं लिखेत्तारं भूतशुद्धिमथाचरेत्।।५८।।

अन्यमतानुसार चन्दन से योनियुक्त त्रिकोण, वृत्त तथा अष्टदल का अंकन करे। पद्म के पूर्वदल में ह्रीं, दक्षिण में स्त्रीं, उत्तर में फम् तथा पश्चिम दल में 'टम्' और योनिरूपी त्रिकोण के मध्य 'हुं' मन्त्र लिखे। पूर्वोक्त रूप से यन्त्राङ्कन करके तब भूतशुद्धि करे।।५७-५८।।

द्वितीये दक्षिणे तारं हुंकारं ताराप्रणवत्वात् टं पश्चिमे भागे कूर्चपत्रास्तु भूपुरद्वयमिति भैरवीयवाक्याच्च मध्ये षट्कोणान्वितं पद्ममिति केचित्।।५९।।

यहाँ 'तार' का अर्थ है 'हुँ' बीज। भैरवीतन्त्र के अनुसार पश्चिम दल में 'टं' तथा योनि (त्रिकोण) में कूर्च 'हुं' लिखे। पत्र के (दल के) बाहरी भाग में दो भूपुर अंकित करे। किसी के अनुसार यन्त्र के बीच में त्रिकोण (योनि) है, उसके स्थान पर षट्कोण का अंकन किया जाता है।।५९।।

षट्कोणान्तर्गतं पद्मे भूबिम्बद्वितयं पुनः।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं वा मन्त्रमालिखेत्।।६०।।
बीजलिखनं तु पूर्ववत्।

पूर्ववत् यन्त्र अंकित करे। उसके मध्य में पूर्ववत् मन्त्राक्षर लिखे।।६०।।

व्योमेन्दौ रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केशरं
वर्गोल्लासिवसुच्छदं वसुमती गेहेन संवेष्टितम्।
ताराधीश्वरवारिवर्णविलसद् दिक्कोणसंशोभितं
यन्त्रं नीलतनोः परं निगदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।६१।।
एवं वा यन्त्रं विलिख्य पीठमर्चयेत्।

यन्त्र निर्माण विधि इस प्रकार है—

कर्णिकामध्य में 'हे साः' मन्त्र लिखे। षोडशदल पद्म में २-२ करके अष्टकेशर लिखे। तदनन्तर वृत्त अंकित करके अष्टदल पद्म का अंकन करना चाहिये। पद्म के अष्टदल में क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह ल क्ष — इसे लिखे। उसके बाहरी भाग में चार द्वार तथा चतुरस्र का अंकन करके चतुर्द्वार में 'वं' तथा कोणचतुष्टय में 'ठं' लिखे।।६१।।

ततोऽर्घ्यपात्रं विन्यस्य द्वारपालान् समर्चयेत्।
गां बीजाद्यं गणेशानं वामाद्यं बटुकं तथा।।६२।।

क्षामाद्यं क्षेत्रपालञ्च यामाद्यं योगिनीं तथा।
पूर्वे पश्चिमे दक्षिणे चोत्तरे पूजयेत् सुधीः ।।६३।।
सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्।

यन्त्र अङ्कन के उपारान्त पीठन्यास करना पड़ता है। सामान्य अर्घ्य को स्थापित करके पीठ के चारों दिशाओं के द्वारपालगण का अर्चन करना चाहिये। 'गां' बीज का आदि में योग करके गणेश का, 'वां' बीज आदि में जोड़कर बटुक का, 'क्षां' बीज आदि में जोड़ कर क्षेत्रपाल का एवं 'यां' बीज आदि में युक्त करके योगिनी का, आदि में प्रणव ऊँ लगाकर, अन्तः में 'नमः' शब्द जोड़कर यथाक्रमेण पूर्व, पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर द्वार पर अर्चन करे।।६२-६३।।

तन्त्रे– ते सर्वे ध्रुवदीर्घाढ्याः शक्तिबीजपुरःसराः ।।६४।।

जैसे—

पीठ के पूर्वद्वार में — ऊँ ह्रीं गां गणेशाय नमः।

पीठ के दक्षिण द्वार में — ऊँ ह्रीं वां वटुकाय नमः।

पीठ के पश्चिम द्वार में — ऊँ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः।

पीठ के उत्तर द्वार में — ऊँ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः।

पीठ मध्य में — ऊँ श्मशानाय नमः, ऊँ कल्पवृक्षाय नमः।

पीठ मूल में — ऊँ मुनिपीठाय नमः।

नानालङ्कारेभ्यो नमः। अलङ्कार का चिन्तन करे।।६४।।

ऊँ लक्ष्म्यै नमः एवं सरस्वत्यै, रत्यै, प्रीत्यै, कीर्त्त्यै, शान्त्यै, तुष्ट्यै, पुष्ट्यै, मध्ये हेसौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।।६५।।

सिद्धसारस्वते

लक्ष्मी सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च।
कीर्तिः शान्तिश्च तुष्टिश्च पुष्टिरित्यष्टशक्तयः ।।६६।।
देव्या नीलसरस्वत्याः पीठशक्तय ईरिताः।
तन्मध्ये पूजयेद्देव्या वाहनं शवमेव च ।।६७।।

तन्त्रादि में कहा गया है कि द्वारपालों के नाम के पूर्व प्रणव, माया बीज तथा दीर्घस्वरयुक्त उनके बीज का योग करना चाहिये, मन्त्र का पूजन भी करना चाहिये।

लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्ति, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि रूपी आठ शक्तियाँ नीलसरस्वती की पीठशक्ति कही जाती हैं। पीठ के मध्य में देवी के वाहन शव की पूजा करे।।६५-६७।।

ततो भूतशुद्धिं कुर्यात्। तद्यथा – स्वाङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा 'हंस' इति मन्त्रेण कुलकुण्डलिनीं जीवात्मानं वैलोम्येन चतुर्विंशतितत्त्वानि सुषुम्नावर्त्मना परमतेजसि संयोज्य, कुम्भकेन ह्रीङ्कारं रक्तवर्णं नाभौ ध्यात्वा पूरकेन तस्य षोडशवारजपेन तदुद्भूतेनाग्निना लिङ्गशरीरं सन्दह्य स्त्रींकारं पीतवर्णं हृदि विचिन्त्य कुम्भकेन तस्य चतुःषष्टिवारजपेन तदुद्भूतेन वायुना भस्म प्रोत्सार्य हुङ्कारं श्वेतवर्णं शिरसि विचिन्त्य रेचकेन तस्य द्वात्रिंशद्वारजपेन तदुद्भूतेनामृतेन तदस्थिप्लावितं कृत्वा समस्तमपगतव्यथं विश्वं शरीरमाप्लावयेत्।।६८।।

इसके बाद भूतशुद्धि करे। अपनी गोद में दोनों हथेलियों को चित्त करके रक्खे और पद्मासन लगाकर 'हंसः' मन्त्र से कुलकुण्डलिनी, जीवात्मा तथा चौबीस तत्त्वों को सुषुम्नामार्ग से उर्ध्वगति द्वारा शिर स्थित सहस्रदलकमलस्थ परमशिव में संयोजित करे। कुम्भक द्वारा नाभि में रक्तवर्ण 'ह्रीं' मन्त्र का चिन्तन करके सोलह बार जप करके पूरक द्वारा उत्पन्न अग्नि से समस्त भौतिक देह को भस्म करे। तदनन्तर 'स्त्रीं' मन्त्र से हृदय में पीतवर्ण का ध्यान करके चौसठ बार जप करते हुये कुम्भक के समय हृदय से उत्पन्न वायु से भौतिक देह की जली हुई भस्म को उड़ाते हुये 'हुं' मन्त्र द्वारा मस्तक में श्वेतवर्ण की भावना बतीस बार जप करते हुये करे। अब मस्तक से उत्पन्न अमृत द्वारा शरीर की अस्थियों को आप्लावित करके इसी अमृत से समस्त विश्वशरीर को प्लावित करके व्यथाशून्य हो जाये।।६८।।

तथा च श्रुतिः– षट्त्रिंशत्तत्त्वानि शरीरमिति। तदात्मानमपगतव्यथं निर्मलं देवताऽभेदेन विचिन्तयेत्। तस्मिन् विश्वव्यापके वारिणि आःकाराद्रक्तपङ्कजं तदुपरि टाङ्कारात् श्वेतपङ्कजं तदुपरि नीलसन्निभं हुङ्कारं ध्यात्वा तदुपरि हुङ्कारभूषितां कर्त्तृकां ध्यायेत्। तदुपरि देवतां ध्यात्वा 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' इत्येकादशवारं जपन् प्राणान् प्रतिष्ठाप्य ध्यायेत्।।६९।।

श्रुति में उक्त है कि छत्तीस तत्त्व से युक्त शरीर है। तदनन्तर व्यथाशून्य होकर विमल निर्मल अपनी आत्मा का देवता के समान अभिन्न चिन्तन भावना करे। उस

विश्वव्यापी अमृत जल में 'आः' से रक्तकमल, 'टा' से श्वेत कमल, उसके ऊपर नीलकमल के समान 'हुं' बीज का चिन्तन करके उसके ऊपर 'हुं'कार भूषिता कर्तृका का चिन्तन करते हुये उसके ऊपर तारिणीदेवी का ध्यान करके 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' मन्त्र का ग्यारह बार जप करके हृदय में प्राणप्रतिष्ठा सम्पन्न करके देवी का ध्यान करे।।६९।।

तदुक्तं फेत्कारीये

माया नाभौ रक्तवर्णां ध्यात्वा तज्जातवह्निना ।
शुक्लं कर्मात्मकं देहं दग्धं सञ्चिन्तयेत्ततः ।।७०।।
स्त्रीङ्कारं हृदि पीताभं तदुद्भूतेन वायुना ।
भस्म प्रोत्सारितं कृत्वा ललाटे चिन्तयेत्ततः ।।७१।।
कूर्चं तुषारवर्णाभां तदुद्भूतामृतेन च ।
तदस्थिप्लावितं कृत्वा तदात्मानं विचिन्तयेत् ।।७२।।
सर्वबाधाविनिर्मुक्तं निर्मलं देवतामयम् ।
कृतशुद्धिं विधायेत्थं शून्यं विश्वं विचिन्तयेत् ।।७३।।

भूतशुद्धि के सम्बन्ध में अन्यमतानुसार नाभि में रक्तवर्ण 'ह्रीं' बीज का चिन्तन करके उससे उत्पन्न वह्नि (अग्नि अर्थात् तैजस चेतना) द्वारा कर्ममय देह को शुद्ध रूप से दग्ध करे (यहाँ दग्ध का अर्थ जलना नहीं है, प्रत्युत अग्नि के तैजस स्पन्द का समस्त शरीर में अनुभव करना है)। तत्पश्चात् हृदय में पीतवर्ण 'स्त्रीं' बीज का चिन्तन करे। इससे उत्पन्न वायु द्वारा देह के दग्धीकरण से उत्पन्न भस्म को उड़ा देना चाहिए। इसके अनन्तर ललाट में तुषार के वर्ण वाले कूर्च बीज की भावना करके (हुं बीज की भावना करके) उससे उत्पन्न अमृत से ललाट के मध्य स्थित अग्नि को प्लावित करके आत्मा को व्यथाशून्य निर्मल तथा विशुद्ध विमल देवता के समान अनुभव करे।।७०-७३।।

निर्मलं निर्गुणं शुद्धमात्मानं देवतामयम् ।
अन्तरीक्षे ततो ध्यायेदाःकाराद्रक्तपङ्कजम् ।।७४।।
भूयस्ततोपरि ध्यायेत् टाङ्कारात् श्वेतपङ्कजम् ।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् हुङ्कारं नीलसन्निभम् ।।७५।।
ततो हुङ्कारजां पश्येत् कर्त्तृकां बीजभूषिताम् ।
कर्त्र्यः परिगतां ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम् ।।७६।।

इस प्रकार भूतशुद्धि के पश्चात् निखिल विश्व को शून्यरूप तथा अपनी आत्मा को निर्लेप, निर्मल, गुणातीत निर्गुण देवतामय रूप से चिन्तन करके अन्तरीक्ष में 'आ:' वर्ण का रक्तकमल स्वरूप ध्यान करे। उसके उपर 'टां' वर्ण को श्वेतकमल रूप, उसके उपर कर्तृका स्वरूप की भावना करके उसके भी उपर अपनी आत्मा का चिन्तन तारिणी रूप से करे।।७४-७६।।

ध्यानम्

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ ।।७७।।
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् ।
चतुर्भुजां लोलजिह्वां महाभीमां वरप्रदाम् ।।७८।।
खड्गकर्तृसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम् ।
कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ।।७९।।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ।।८०।।
जलच्चितामध्यगतां घोरदन्ष्ट्रां करालिनीम् ।
सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलङ्कारविभूषिताम् ।।८१।।
विश्वव्यापकतोयान्तःश्वेतपद्मोपरि स्थिताम् ।
अक्षोभ्यो देवीमूर्धन्यस्त्रिमूर्त्तिर्नागरूपधृक् ।।८२।।

देवी बायें पैर को आगे बढ़ाकर अवस्थित हैं। वे भयङ्कर, खर्व तथा लम्बोदरी हैं। उनके गले में नरमुण्ड की माला है तथा कमर में व्याघ्रचर्म लपेटे हुये हैं। वे नवयौवन से सम्पन्न एवं पञ्च मुद्रा से विभूषित हैं। उनके चार बाहु हैं। वे लपलपाती जिह्वा वाली, महाभयङ्कर स्वरूपा तथा वरप्रदा हैं। दाहिनी ओर के दोनों हाथों में खड्ग तथा कैंची है। बायीं ओर के दोनों हाथों में नरमुण्ड तथा उत्पल है। वे उनके शिर पर पिङ्गल वर्ण की एक जटा है। कपाल पर नागरूपधारी त्रिमूर्त्ति अक्षोभ्य ऋषि हैं। ये बाल सूर्य के समान तीन नेत्रों से विभूषित हैं। वे प्रज्वलित चिता में स्थित हैं। उनके दाँतों की पंक्ति अत्यन्त भयङ्कर है। देवी अपने ही भावावेश से हास्य युक्त मुखाकृति वाली हैं। वे स्त्रीगण के लिये विहित नाना अलङ्कारों से

विभूषित हैं तथा विश्वव्यापक सलिल (कारण सलिल) के मध्य श्वेत कमल पर अवस्थित हैं।।७७-८२।।

पञ्चश्वेतास्थिपट्टिकाचतुष्टयान्वितकपालपञ्चकभूषितामित्यर्थः। पञ्चमुद्राविभूषितामीति ललाटे श्वेतास्थिपट्टिकायुक्त(चतुष्टयान्वित)कपालपञ्चकशोभितामिति।

श्रीशङ्कराचार्येणाप्युक्तम्

विचित्रास्थिमाला ललाटे करालां कपालञ्च पञ्चान्वितं धारयन्तीमिति।।८३।।

पञ्चमुद्रा शब्द से श्वेतास्थिनिर्मित पट्टिका (चतुष्टय) तथा पञ्चम नरकपाल कहा जाता है। उनके ललाट में श्वेतवर्ण की अस्थिपट्टिका है। वह पाँच नरकपाल से विभूषित हैं। शङ्कराचार्य जी ने भी कहा है कि ललाट में भीषण विचित्र अस्थिमाला है और पाँच नरकपाल उन्होंने धारण किया है।।८३।।

अथ प्राणायामः

वामानासापुटेन मूलं चतुर्वारं जप्त्वा वायुं पूरयेत्। तदनु नासापुटौ धृत्वा षोडशवारेण कुम्भयेत्। तदनु दक्षिणनासापुटेन वाराष्टकावर्त्तेन रेचयेत्। पुनर्दक्षिणेनापूर्य कुम्भयित्वा वामेन रेचयेत्। पुनर्वामेनापूर्य कुम्भयित्वा दक्षिणेन रेचयेदिति प्राणायामत्रयं भवति।।८४।।

ततः ऋष्यादिन्यासः

शिरसि — **अक्षोभ्यऋषये नमः।**

मुखे — **बृहतीच्छन्दसे नमः।**

हृदि — **श्रीमदेकजटायै नमः।**

मूलाधारे— **हुं बीजाय नमः।**

पादयोः— **फट् शक्तये नमः।**

शेषाण्यक्षराण्युच्चार्य सर्वाङ्गे — **कीलकाय नमः।।८५।।**

अब प्राणायाम करना चाहिये। प्रथमतः मूलमन्त्र चार बार जप करे। वाम नासिका से वायु खींचे (पूरक)। दोनों नासापुटों को बन्द रखकर मूलमन्त्र का सोलह

बार जप करे (कुम्भक)। इसके पश्चात् दक्षिण नासिका से (उक्त मूलमन्त्र आठ बार जप करते हुये) वायु बाहर फेके (रेचक)। पुनः इसी प्रकार दक्षिण नासिका से वायु भीतर खीचना चाहिये। मूलमन्त्र चार बार जप करके वायु भीतर खीचे (पूरक)। दोनों नासापुटों को बन्द रखकर मूल मन्त्र का सोलह बार जप करे (कुम्भक)। इसके पश्चात् वाम नासिका से (उक्त मूलमन्त्र आठ बार जप करते हुये) वायु को बाहर फेके (रेचक)। इस प्रकार से तीन बार प्राणायाम करे। अब ८५वें श्लोक में लिखा ऋष्यादि न्यास करे।।८४-८५।।

तथा च वीरतन्त्रे

अक्षोभ्यऋषिरेतस्या बृहतीच्छन्द ईरितम्।
नीलसरस्वती देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता।।८६।।
'हुं' बीजं मन्त्रशक्तिः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदा।

मातृकान्यासः

यथा काली तथा नीला तत्क्रमोन्मातृकां न्यसेत्।।८७।।

तद्यथा—

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं नमो हृदि।
एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमो दक्षभुजे।
ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमो वामभुजे।
णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमो दक्षिणजङ्घायाम्।
मं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं नमो वामजङ्घायाम्।।८८।।

अङ्गन्यासकरन्यासौ

ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ह्रीं अखण्डवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां वषट्।
ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां हुम्।
ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलपृष्ठाभ्यां फट्।
एवं हृदयादिषु। अङ्गुलीनियमन्तु पूर्व एवोक्तः।।८९।।

इस प्रकार से न्यासादि करना चाहिए। हृदयादिन्यास भी इसी नियमानुसार करे। अङ्गन्यास के लिए अङ्गुलि नियम पहले कहा जा चुका है।।८६-८९।।

तथा च तामधिकृत्य सिद्धसारस्वते

हृदयन्यासः

अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः।
अखण्डवाग्रूपिण्यै शिरसे स्वाहा।
ब्रह्मवाग्रूपिण्यै शिखायै वषट्।
विष्णुवाग्रूपिण्यै कवचाय हुम्।
रुद्रवाग्रूपिण्यै नेत्रत्रयाय वौषट्।
सर्ववाग्रूपिण्यै अस्त्राय फट्।।९०।।
षट्दीर्घमायाबीजान्ते ङेऽन्तं नामाभियोजयेत्।

छः दीर्घस्वर का योग करके मायाबीज के अन्त में चतुर्थी के एकवचन के अनन्तर उक्त नाम समूह का प्रयोग करना चाहिये।।९०।।

बीजान्ते एकजटायै हृदयं परिकीर्तितम्।।९१।।
तारिण्यै शिरसे तद्वद्वज्रोदके शिखा तथा।
उग्रजटे तु कवचं महाप्रतिसरे तथा।।९२।।
पिङ्गोग्रैकजटे तद्वन्नेत्रान्ते परिकीर्तिते।
षड्दीर्घभागबीजान्ते ङेऽन्तं नामाभियोजयेत्।।९३।।

एकजटा के लिये अन्य तन्त्रों में कहा गया है—

ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः।
ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा।
ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्।
ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुम्।
ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्।
ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट्।।९१-९३।।

तथा च फेत्कारीये

अत्रोक्तमाचरेत् सम्यक् नान्यत् सञ्चारयेद्बुधः।
ततः फलार्थिना ताराषोढान्यासः कर्त्तव्यः।।९४।।

ताराषोढां प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपिताम् ।
सर्वविघ्नोपशमनीं सर्वपापप्रणाशिनीम् ।।९५।।

महादारिद्र्यशमनीं सर्वसम्पत्प्रदायिनीम् ।
सर्वकामप्रदां नित्यां सर्वसाम्राज्यदायिनीम् ।।९६।।

शिष्याय भक्तियुक्ताय विनीताय महात्मने ।
वदान्याय कुलीनाय शुद्धाचाररताय च ।।९७।।

एवंविधाय देवेशि साधकाय प्रकाशयेत् ।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यादित्याज्ञा शङ्करैः कृता ।।९८।।

यहाँ सर्वतन्त्रों में गुप्त ताराषोढान्यास कहा गया है। यह समस्त विघ्नविनाशक तथा पापनाशक है। इसे सम्पन्न करने के बाद तारामन्त्र की आराधना करके महती दरिद्रता को समाप्त किया जा सकता है। सब प्रकार की सम्पत्ति की प्राप्ति तथा उन्नति इसी से होती है। इससे समस्त अभीष्ट पूर्ण हो जाते हैं, साम्राज्य प्राप्त होता है। जो शिष्य विनयी, भक्तियुक्त, सदाशय, विनीत, महात्मा, दानशील तथा सत्कुल में उत्पन्न एवं सदाचार युक्त है, उसे ही इस न्यास का ज्ञान देना चाहिए। महादेव का ऐसा आदेश है कि ऐसे गुणी व्यक्ति के अतिरिक्त अन्य किसी को भी यह न्यास देने से गुरु की मन्त्रसिद्धि नष्ट हो जाती है।।९४-९८।।

रुद्रैस्तु प्रथमो न्यासो द्वितीयस्तु ग्रहैर्मतः ।
लोकपालैस्तृतीयः स्याच्छिवशक्त्या चतुर्थकः ।।९९।।

तारादिभिः पञ्चमः स्यात् षष्ठः पीठैर्निगद्यते ।
एकेन सहिता रुद्राः पञ्चाशत् परिकीर्तिताः ।।१००।।

प्रथम रुद्रन्यास, द्वितीय ग्रहन्यास, तृतीय लोकपालन्यास, चतुर्थ शिवशक्तिन्यास, पञ्चम तारादिन्यास, षष्ठ पीठन्यास को करने से षोढान्यास सम्पन्न हो जाता है।।९९-१००।।

बिन्दुयुक्तैः मातृकार्णैस्त्र्यक्षरीबीजपूरकैः ।
ङेऽन्तैर्नमोऽन्तैर्देवेशि विन्यसेत्तान् क्रमात् सुधीः ।।१०१।।

तारिणी त्र्यक्षरी प्रोक्ता भवबन्धविनाशिनी ।
नीलवर्णां त्रिनयनां शवासनसमायुताम् ।।१०२।।

विभ्रतीं विविधां भूषां मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ।
एवं ध्यात्वा तारिणीन्तु समाहितमनाश्चिरम् ।।१०३।।

'ह्लीं स्त्रीं हुं' बीजमन्त्र के अनन्तर अकारादि वर्ण को बिन्दुयुक्त करके चतुर्थी विभक्त्यन्त देवता का नाम लेकर अन्त में नमः शब्द का योग करके न्यास करे। 'ह्लीं स्त्रीं हुं' तारादेवी के मन्त्र से न्यास करने पर पुनः संसार में नहीं आना पड़ता। तारादेवी नीलवर्णा, त्रिनयना, शवासनासीना, विविध आभूषणों से युक्ता एवं शिरःप्रदेश पर अक्षोभ्य ऋषि से भूषित हैं। ऐसा ध्यान करके समाहित चित्त होकर एकाग्रमन से न्यास करे।।१०१-१०३।।

अथ रुद्रन्यासः

ह्लीं स्त्रीं हुं अं श्रीकण्ठेशाय नम, ह्लीं स्त्रीं हुं आं अनन्तेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं इं सूक्ष्मेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ईं त्रिमूर्त्तीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं उं अमरेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ऊं अर्धीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ऋं भारभूतीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ॠं अतिथीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ऌं स्थाणुकेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ॡं हरेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं एं झिण्टीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ऐं भौतिकेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ओं सद्योजातेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं औं अनुग्रहेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं अं अक्रूरेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं अः महासेनेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं कं क्रोधीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं खं चण्डेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं गं पञ्चान्तकेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं घं शिवोत्तमेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ङं एकरुद्रेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं चं कूर्मेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं छं एकनेत्रेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं जं चतुराननेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं झं अजेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ञं सर्वेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं टं सोमेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ठं लाङ्गलीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं डं दारुकेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं ढं अर्द्धनारीश्वराय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं णं उमाकान्तेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं तं आषाढीशाय नमः, ह्ली स्त्रीं हुं थं दन्तीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं दं अद्रीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं धं धीनेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं नं मेषेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं पं लोहितेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं फं शिखीशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं हुं बं छगलण्डेशाय नमः, ह्लीं स्त्रीं

हुं भं द्विरण्डेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं मं महाकालेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं यं बालीशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं रं भुजङ्गेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं लं पिनाकीशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं वं खड्गीशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं शं बकेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं षं श्वेतेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं सं भृग्वीशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं हं नकुलीशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं ळं शिवेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं क्षं संवर्त्तकेशाय नमः। इति रुद्रन्यासः।।१०४।।

षोढान्यास प्रणाली — प्रथमतः रुद्रन्यास करे। जैसे मस्तक में "ह्रीं स्त्रीं हुं अं श्री कण्ठेशाय नमः" इत्यादि क्रम से मातृकान्याससस्थान में अर्थात् ललाट मुख, उदर, चक्षु, दोनों नासिका, दोनों कान, दोनों गण्डस्थल, दोनों ओठ, दोनों दन्तपंक्ति, मस्तक, मुख, बाहुमूल, केहुनी (दोनों), मणिबन्ध, अंगुलिमूल, अंगुली का अग्रभाग, उरुमूल, जंघामूल, पादमूल एवं सन्धि, पैर की अंगुलियों का मूल भाग, उनका अग्रभाग, दोनों पार्श्व, पृष्ठ, नाभि, उदर, वक्षमूल दक्षिण कन्धा, ककुदस्थान, बाँया कन्धा, इत्यादि दक्षिणहस्त, हृदयादि वामहस्त, हृदयादि दक्षिणपाद, हृदयादि वामपाद, हृदयादि उदर तथा हृदयादि मुख, इन समस्त स्थान के मूल में लिखित मन्त्र का न्यास करे। प्रत्येक देवता के नामाक्षर के आदि में "ह्रीं स्त्रीं हुं" बीज तथा अकरादि पचास वर्ण में एक एक वर्ण का योग करना होगा। मूलग्रन्थ में ये तीन बीज अंकित नहीं हैं। परन्तु संकेत के अनुसार इनका योग आवश्यक है।।१०४।।

अथ ग्रहन्यासः

स्वरैर्हृदि न्यसेदर्कः रक्तं त्र्यक्षरपूर्वकैः।
भ्रुवोर्मध्ये अवर्गेन सोमं शुक्लन्तु विन्यसेत्।।१०५।।

नेत्रत्रये कवर्गेण लोहितं मङ्गलं न्यसेत्।
हृन्मण्डले तथा श्यामं चवर्गेण बुधं न्यसेत्।।१०६।।

कण्ठकूपे पीतवर्णं टवर्गेण बृहस्पतिम्।
पाण्डुराभं तवर्गेण शुक्रन्तु गलदेशके।।१०७।।

नाभिदेशे नीलवर्णं पवर्गेण शनैश्चरम्।
शवर्गेण धूम्रवर्णं राहुं वक्त्रे न्यसेत्ततः।।
लक्षाभ्यां गुददेशे च केतुं धूम्रं वरानने।।१०८।।

प्रयोगन्तु – हृदि रक्तवर्णं सूर्यं ध्यात्वा 'ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लृं एं ऐं ओं औं अं अः सूर्याय नमः। भ्रूमध्ये शुक्लवर्णं सोमं ध्यात्वा ह्रीं स्त्रीं हुं यं रं लं वं सोमाय नमः।

नेत्रत्रये लोहितं मङ्गलं ध्यात्वा "ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं मङ्गलाय नमः"।

हृदयमण्डले श्यामं बुध ध्यात्वा 'ह्रीं स्त्रीं हुं चं छं जं झं ञं बुधाय नमः'।

कण्ठकूपे पीतवर्णं बृहस्पतिं ध्यात्वा 'ह्रीं स्त्रीं हुं टं ठं डं ढं णं बृहस्पतये नमः'।

गण्डदेशे पाण्डुरं शुक्रं ध्यात्वा 'ह्रीं स्त्रीं हुं तं थं दं धं नं शुक्राय नमः'।

नाभिदेशे नीलवर्णं शनैश्चरं ध्यात्वा ह्रीं स्त्रीं हुं पं फं बं भं मं शनैश्चराय नमः।

मुखे धूम्रवर्णं राहुं ध्यात्वा ह्रीं स्त्रीं हुं यं रं लं वं शं षं सं हं राहवे नमः।

गुदे धूम्रवर्णं केतुं ध्यात्वा ह्रीं स्त्रीं हुं ळं क्षं केतवे नमः। इति ग्रहन्यासः।।१०९।।

रुद्रन्यास के अनन्तर ग्रहन्यास करे। हृदय में रक्तवर्ण सूर्य का ध्यान करके "ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लं लृं एं ऐं ओं औं अं अः सूर्याय नमः" द्वारा हृदयन्यास करे। भ्रूमध्य मे शुक्लवर्ण सोम (चन्द्र) का ध्यान करके "ह्रीं स्त्रीं हुं यं रं लं वं सोमाय नमः" कहकर न्यास करे।

दोनों नेत्रों में लोहितवर्ण मंगल का ध्यान करके 'ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं मङ्गलाय नमः' द्वारा न्यास करे।

हृदयमण्डल में श्यामवर्ण बुध का ध्यान करके 'ह्रीं स्त्रीं हुं चं छं जं झं ञं बुधाय नमः' का न्यास करे।

कण्ठकूप में पीतवर्ण बृहस्पति का ध्यान करके 'ह्रीं स्त्रीं हुं टं ठं डं ढं णं बृहस्पतये नमः' का न्यास करे।

गलदेश में पाण्डुर वर्ण के शुक्र का ध्यान करके 'ह्रीं स्त्रीं हुं तं थं दं धं नं शुक्राय नमः' का न्यास करे।

नाभिदेश में नीलवर्ण शनि का ध्यान करके 'ह्रीं स्त्रीं हुं पं फं बं भं मं शनैश्चराय नमः' का न्यास करे।

मुख में धूम्रवर्ण राहु का ध्यान करके 'ह्रीं स्त्रीं हुं यं रं लं वं शं षं सं हं राहवे नमः' द्वारा राहु का न्यास करे।

गुदादेश में धूमवर्णं केतु का ध्यान करके 'ह्रीं स्त्रीं हुं ळं क्षं केतवे नमः' का न्यास करे।।१०५-१०९।।

अथ लोकपालन्यासः

इन्द्रमग्निं यमं रक्षो वरुणं पवनं विभुम्।
ईशानमात्मना मूर्ध्नि दिक्षु चाष्टास्वनुक्रमात् ।।११०।।
अधोऽनन्तमूर्ध्वदेशे, ब्रह्माणञ्च ततो न्यसेत्।
ह्रस्वदीर्घस्वरैश्चाष्टवर्गैस्त्र्यक्षरपूर्वकैः ।।१११।।

आत्मनः मूर्ध्नि देशेऽष्टदिक्ष्वध ऊर्ध्वञ्च विन्यसेदित्यर्थः।

तत्र प्रयोगः—

ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं कं ५ इन्द्राय नमः। नमः सर्वत्रः। ३ इं ईं ५ अग्नये। ३ उं ऊं टं ५ यमाय। ३ ऋं ॠं ते ५ नैर्ऋताय। ३ ऌं ॡं पं ५ वरुणाय। ३ एं ऐं यं रं लं वं वायवे। ३ ओं औं शं षं सं हं कुबेराय। ३ अं अः ळं क्षं इशानाय। ३ अधः अनन्ताय। ३ ऊर्ध्वं ब्रह्मणे। इति लोकपालन्यासः।।११२।।

इस प्रकार लोकपालन्यास करें। अपने मस्तक के आठों दिशाओं की ओर आठ देवों का न्यास करें। ऊर्ध्व में ब्रह्मा तथा अधः में अनन्त का न्यास किया जाता है।

ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं कं खं गं घं ङं इन्द्राय नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं इं ईं चं छं जं झं ञं अग्नये नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं यमाय नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं ऋं ॠं तं थं दं धं नं नैर्ऋताय नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं ऌं ॡं पं फं बं भं मं वरुणाय नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं एं ऐं यं रं लं वं वायवे नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं ओं औं शं षं सं हं कुबेराय नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं अं अः लं क्षं ईशानाय नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं अधः अनन्ताय नमः।

ह्रीं स्त्रीं हुं ऊर्ध्वं ब्रह्मणे नमः।

यह लोकपालन्यास है।।११०-११२।।

अथ शिवशक्तिन्यासः

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवो देवि षट्शिवाः परिकीर्तिताः ।।११३।।

अब शिवशक्तिन्यास कहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव एवं परमशिव को षट्शिव कहा गया है।।११३।।

मूलाधारे तु ब्रह्माणं डाकिनीसंहितं न्यसेत् ।
सर्वत्र त्र्यक्षरीमुक्त्वा वादिसान्तं सबिन्दुकम् ।।११४।।

स्वाधिष्ठानाख्यचक्रे तु सविष्णुराकिणीं तथा ।
वादिलान्तं प्रविन्यस्य नाभौ तु मणिपूरके ।।११५।।

डादिफान्तार्णसहितं रुद्रञ्च लाकिनीं तथा ।
अनाहते कादिठान्तं ईश्वरं काकिनीं न्यसेत् ।।११६।।

विशुद्धाख्यमहाचक्रे षोडशस्वरसंयुतम् ।
सदाशिवं शाकिनीन्तु विन्यसेत् पूर्ववत्ततः ।।११७।।

आज्ञाचक्रे तु देवेशि हक्षवर्णसमन्वितम् ।
परं शिवं ब्रह्मरूपं हाकिनीसहितं न्यसेत् ।।११८।।

मूलाधार में — ह्रीं स्त्रीं हुं वं शं षं सं डाकिनीसहितब्रह्मणे नमः।

स्वाधिष्ठान में — ह्रीं स्त्रीं हुं बं भं मं यं रं लं वं राकिनीसहितविष्णवे नमः।

मणिपूर में — ह्रीं स्त्रीं हुं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीसहितरुद्राय नमः।

अनाहत में — ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनी-सहितेश्वराय नमः।

विशुद्धाख्य चक्र में — ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनीसहितसदाशिवाय नमः।

आज्ञाचक्र में — ह्रीं स्त्रीं हुं हं क्षं हाकिनीसहितपरशिवाय नमः।।११४-११८।।

अथ तारादिन्यासः

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा काली सरस्वती ।
कामेश्वरी च चामुण्डा इत्यष्टौ तारिणी मता ।।११९।।
सवादौ तारिणीवर्णं समुच्चार्य क्रमेण तु ।
स्वरादिवसुवर्गेण भूषितेन च बिन्दुना ।।१२०।।
ङेन्ता नमोऽन्ता न्यस्तव्यस्ताराद्या ध्यानपूर्विकाः ।
ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कण्ठगह्वरे ।
हृदये नाभिदेशे च लिङ्गे चाधारके न्यसेत् ।।१२१।।

अब तारादिन्यास कहा जाता है। तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, काली, सरस्वती, कामेश्वरी तथा चामुण्डा को अष्ट तारिणी कहते हैं। ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, लिङ्ग तथा मूलाधार में तारान्यास कहते हैं।

ब्रह्मरन्ध्र में — ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः तारायै नमः ।

ललाट में— ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं उग्रायै नमः ।

भ्रूमध्य में— ह्रीं स्त्रीं हुं चं छं जं झं ञं महोग्रायै नमः ।

कण्ठगह्वर में— ह्रीं स्त्रीं हुं टं ठं डं ढं णं वज्रायै नमः ।

हृदय में— ह्रीं स्त्रीं हुं तं थं दं धं नं काल्यै नमः

नाभि में— ह्रीं स्त्रीं हुं पं फं बं भं मं सरस्वत्यै नमः।

लिङ्ग में— ह्रीं स्त्रीं हुं यं रं लं वं कामेश्वर्यै नमः ।

मूलाधार में— ह्रीं स्त्रीं हुं शं षं सं हं ळं क्षं चामुण्डायै नमः ।।११९-१२१।।

अथ पीठन्यासः

मूलाधारे कामरूपं हृदि जालन्धरं तथा ।
ललाटे पूर्णगिर्याख्यं उड्डीयानं तदूर्ध्वके ।।१२२।।

वाराणसीं भ्रुवोर्मध्ये ज्वलन्तीं लोचनत्रये ।
मायावती मुखवृन्ते कण्ठे मधुपुरीं ततः ।।१२३।।

अयोध्यां नाभिदेशे च कट्यां काञ्चीं विनिर्दिशेत् ।
दशैतानि प्रधानानि पीठानि क्रमशो विदुः ।।१२४।।

ह्रस्वदीर्घस्वरैर्भिन्नैर्नमोन्तैः क्रमतो न्यसेत् ।
ह्रस्वदीर्घस्वरैर्वर्गैर्नमोन्तैः क्रमतो न्यसेत् ।।१२५।।

इस प्रकार पीठन्यास कहा जा रहा है। मूलाधार में कामरूप, हृदय में जालन्धर ललाट में पूर्णगिरि, उससे उपर उड्डीयान, भ्रूमध्य में वाराणसी, नेत्र में ज्वलन्ती, मुख में मायावती, कण्ठ में मधुपुरी, नाभि में अयोध्या तथा कमर में काँची पीठ का न्यास करना चाहिए। ये दस प्रधान पीठ हैं।

न्यास इस प्रकार करे—

मूलाधार में— ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं कं खं गं घं ङं कामरूपपीठाय नमः ।

हृदय में— ह्रीं स्त्रीं हुं इं ईं चं छं जं झं ञं जालन्धरपीठाय नमः ।

ललाट में— ह्रीं स्त्रीं हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं पूर्णगिरिपीठाय नमः ।

ललाट के ऊर्ध्व में— ह्रीं स्त्रीं हुं ऋं ॠं तं थं दं धं नं उड्डीयानपीठाय नमः ।

भ्रूमध्य में— ह्रीं स्त्रीं हुं लृं लॄ पं फं बं भं मं वाराणसीपीठाय नमः ।

लोचनत्रय में— ह्रीं स्त्रीं हुं एं ऐं यं रं लं वं ज्वलन्तीपीठाय नमः ।

मुख में— ह्रीं स्त्रीं हुं ओं औं शं षं सं हं मायावतीपीठाय नमः ।

कण्ठ में— ह्रीं स्त्रीं हुं अं अः ळं क्षं मधुपुरीपीठाय नमः ।

नाभिदेश में— ह्रीं स्त्रीं हुं अयोध्यापीठाय नमः ।

कटि में— ह्रीं स्त्रीं हुं काञ्चीपीठाय नमः ।।१२२-१२५।।

इति रुद्रयामले ताराषोढान्यासः ।

इति षोढा प्रकथिता तारायाः सर्वसिद्धिदा ।
अक्षोभ्यः सर्वजन्तूनां न्यासस्यास्य प्रसादतः ।।१२६।।

यह तारा का सर्वसिद्धिदायक षोढान्यास है। इस न्यास के करने से साधक सम्पूर्ण प्राणियों से अक्षोभ्य हो जाता है। रुद्रयामलोक्त ताराषोढान्यास समाप्त हुआ।।१२६।।

प्रकारान्तरे कालीतन्त्रे

मन्त्रेणान्तरितां कृत्वा षड्धा च मातृकां न्यसेत् ।
क्रमात् क्रमाद्वरारोहे ताराषोढा प्रकीर्त्तिता ।।१२७।।

अन्य प्रकार से भी षोढान्यास कहा गया है। मातृका के मूलमन्त्र से पुटित करके अङ्ग प्रत्यङ्ग में न्यास करे। अनुलोम विलोम क्रम से छः बार न्यास करने से एक षोढान्यास सम्पन्न होता है।

अनुलोम में ललाट पर —

ह्रीं स्त्रीं हुं फट् अं ह्रीं स्त्रीं हुं फट् नमः ।

मुख में —

'ह्रीं स्त्रीं हुं फट् आं ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' इत्यादि प्रकार के न्यास को अनुलोम न्यास कहते हैं।

विलोमन्यास हृदयादि में—

ह्रीं स्त्रीं हुं फट् क्षं ह्रीं स्त्रीं हुं फट् नमः इत्यादि को विलोमन्यास कहते हैं।।१२७।।

कृतेऽस्मिन् न्यासवर्ये तु सर्वं पापं प्रणश्यति ।
योगिनीनां भवेत् पूज्यः स देवो न तु मानुषः ।।१२८।।
यं नमन्ति महेशानि षोढापुटितविग्रहा ।
अल्पायुः स भवेत् सद्यो देवता कम्पते भिया ।
नास्तस्य पूज्यलोकेषु पितृमातृमुखोज्ज्वलः ।।१२९।।

इस षोढान्यास को करने से साधक के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। जो साधक इस प्रकार तारादेवी का षोढान्यास करता है, वह योगिनीगण का पूज्य एवं देवतुल्य हो जाता है। उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता (अर्थात् देवता हो जाता है)। ऐसा व्यक्ति जिसे प्रणाम करे, वह अल्पायु हो जाता है। उसके भय से देवगण कम्पित हो उठते हैं। ऐसे व्यक्ति के लिए कोई अन्य व्यक्ति पूज्यनीय नहीं रह जाता। ऐसा साधक पिता माता तथा गुरुजन का मुख उज्ज्वल करता है ।।१२८-१२९।।

तन्त्रान्तरे

न्यसेत् सर्गान्वितां सृष्ट्या हृत्या विन्द्वन्तिकां न्यसेत् ।
बिन्दुसर्गान्वितां न्यसेत् डाद्यर्णान् स्थितिवर्त्मना ।।१३०।।

संहृतेर्दोषसंहारः सृष्टेस्तु सूतपुष्टयः ।
स्थितेस्तु शान्तिविन्यासस्तस्मात् कार्यास्त्रिधा मतः ।।१३१।।

सृष्टि, स्थिति तथा संहार क्रम में उक्त न्यास विहित है। सृष्टिन्यास में विसर्ग लगाकर, संहारक्रम में विन्दु लगाकर, स्थितिन्यास में दोनों को लगाकर न्यास करे। संहारन्यास से साधक के समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। सृष्टिन्यास से पुष्टिवृद्धि होती है। स्थितिन्यास से सभी शान्ति मिलती है ।।१३०-१३१।।

न्यासः संहारान्तो मस्करिवैखानसेषु विहितोऽयम् ।
स्थित्यन्तो गृहमेधिषु सृष्ट्यन्तो वर्णिनामिति प्राहुः ।।१३२।।

वैराग्ययुजि गृहस्थे संहारान्तं केचिदाहुराचार्याः ।
सहजानौ वनवासिनि स्थितिञ्च विद्यार्थिनां सृष्टिम् ।।१३३।।

एतेन सृष्टिस्थितिसंहृतिक्रमेण कर्त्तव्यम्। षड्धा चेति सृष्टिस्थित्याद्युत्क्रमेणेत्यर्थः। सृष्टिरकारादिक्षकारान्तः। स्थितिर्डादिठान्तः। संहृतिः क्षकाराद्यकारान्तः ।।१३४।।

संहारन्यास से साधक के दोष नष्ट हो जाते हैं। सृष्टिन्यास से सन्तान पुष्ट होता है। वह पुष्ट एवं वृद्धि प्राप्त करता है। स्थिति न्यास से सब प्रकार की शान्ति मिलती है। अतः सृष्टि, स्थिति तथा संहार क्रम से क्रमशः न्यास करे।

संन्यासी तथा वानप्रस्थाश्रमी साधक तीनों न्यास करे। गृहस्थ के लिये केवल सृष्टि एवं स्थिति न्यास विहित है। ब्रह्मचारी तथा व्रतधारी केवल सृष्टिन्यास करे।

कोई कोई आचार्य कहते हैं कि वैराग्यवाला गृहस्थ भी तीनों न्यास कर सकता है। जो सपत्नीक वनवासी हैं, वे स्थिति न्यास करें। विद्यार्थी सृष्टिन्यास करें। सृष्टिन्यास 'अ'कार से 'क्ष' पर्यन्त होता है। स्थितिन्यास 'ड' से 'ठ' पर्यन्त एवं संहारन्यास 'क्ष'कारादि अकारान्त वर्ण से करे।।१३२-१३४।।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यषोढा त्वियं प्रिये ।
न प्रकाश्यमिदं कापि मन्त्रिणः कायशोधने ।।१३५।।

प्रणवं मातृकावर्णैः पुटितं मातृकास्थले ।
तेनैव पुटितं वर्णं न्यस्येत्तत्रैव पार्वति ।।१३६।।

अन्य प्रकार से न्यासविधि कहते हैं। हे प्रिये! यह गुह्य षोढा है। इसे सदा गुप्त रखना चाहिए। इससे साधक का शरीर शुद्ध हो जाता है। अ से क्ष पर्यन्त वर्णों को ऊँ से पुटित करके इसका न्यास करें एवं प्रणव द्वारा अ से क्ष पर्यन्त वर्ण समूह को प्रणव से पुटित करके न्यास करें ।।१३५-१३६।।

मायाबीजं तथा देवि विन्यस्तव्यं प्रयत्नतः ।
वधुबीजं तथा चैव विन्यसेत् सुसमाहितः ।।१३७।।

कूर्च्चबीजं तथा देवि न्यसनीयमशेषतः ।
अस्त्रं चैव तथा न्यस्त्वा सकलं तदन्तरम् ।।१३८।।

जैसे ललाट स्थान पर 'अं ऊँ अं नमः'। मुख में 'आं ऊँ आं नमः'। इत्यादि।

ललाट पर ऊँ अं ऊँ नमः। मुख में ऊँ आं ऊँ नमः। इत्यादि।

इस प्रकार से मायाबीज को (ह्रीं) अकारादि वर्ण से पुटित करके पूर्वोक्त रूप से न्यास करे। जैसे ललाट पर 'अं ह्रीं अं नमः'। मुख में 'आं ह्रीं आं नमः' इत्यादि एवं ललाट में ह्रीं आं ह्रीं नमः' इत्यादि। इसके अनन्तर अकारादि वर्ण द्वारा "स्त्रीं" (वधूबीज) को पुटित करके तथा वधूबीज (स्त्रीं) द्वारा अकारादि वर्ण को पूटित करके मातृकान्यास के स्थान पर न्यास करे। जैसे ललाट में 'अं स्त्रीं अं नमः'। मुख में "आं स्त्रीं आं नमः" ललाट में 'स्त्रीं अं स्त्रीं नमः। मुख में "स्त्रीं आं स्त्रीं नमः" इत्यादि। तदन्तर कूर्चबीज (हुं) अकारादि वर्ण द्वारा पुटित करके तथा कूर्चबीज द्वारा अकारादि वर्ण को पुटित करके पूर्ववत् न्यास करे। जैसे ललाट में 'अं हुं अं नमः'। मुख में 'आं हुं आं नमः' ललाट में 'हुं अं हुं नमः'। मुख में 'हुं आं हुं नमः' इत्यादि।।१३७-१३८।।

गुह्यषोढा त्वियं देवि न प्रकाश्या कदाचन।
इत्थं च सिद्धिदा लोके तथा देवासुरेषु च।।१३९।।
अवश्यं प्रत्यहं कार्या न पूजा न जपस्तथा।

तदन्तर अस्त्रबीज (फट्) को अकारादि वर्ण से पुटित करे तथा अकारादि वर्ण को अस्त्रबीज से पुटित करके पूर्ववत् न्यास करे। जैसे ललाट में 'अं फट् अं नमः'। मुख में 'आं फट् आं नमः' इत्यादि पुनः ललाट में 'फट् अं फट् नमः' मुख में फट् आं फट् नमः' इत्यादि। तत्पश्चात् ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' इस बीज को अकारादि वर्ण से पुटित करके इसी बीज (ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्) द्वारा अकारादि वर्ण को पुटित करके पूर्वोक्त प्रणाली से न्यास करे, जैसे 'अं ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् अं नमः— (ललाट में)। 'आं ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् आं नमः' (मुख में)। पुनः ललाट में ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् अं ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् नमः'। मुख में 'ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् आं ऊँ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् नमः' इत्यादि। यही है गुह्य षोढा। इसे सदैव गोपित रक्खे। कभी भी प्रकाशित न करे। देव, दैत्य, नर प्रभृति सभी सम्प्रदाय में दीक्षित इस न्यास से सिद्धि प्राप्त करते हैं। प्रत्येक दिन इसे करना चाहिए। इसे करने पर पूजा तथा जप की आवश्यकता नहीं रह जाती। तथा षोढान्यास जो न कर सके, उसे कालीषोढ़ान्यास करना चाहिए।।१३९।।

गुह्यषोढा सदा कार्या तारिण्या मन्त्रसिद्धये।।१४०।।
कालीषोढाथवा देवि न पूजा न जपस्तथा।

इस विषय में यह मत है कि कालीषोढान्यास करने पर पूजा तथा जप का कोई प्रयोजन नहीं है।।१४०।।

ततो मूलमुच्चार्य शिर आदिपादपर्यन्तं पादादिशिरोहस्तं हृदादिमुखपर्यन्तं व्यापकत्रयं न्यसेत्। अथवा प्रणवपुटितमूलेन व्यापकन्यासं सप्तधा पञ्चधा वा कुर्यात्।

तदुक्तं फेत्कारीये

ऊँकारपुटितं कृत्वा मनुना व्यापकं न्यसेत्।।१४१।।

तदनन्तर मूलमन्त्र का उच्चारण करके मस्तक से पैर पर्यन्त, पैर से मस्तक पर्यन्त, हृदय से मुख पर्यन्त त्रिविध व्यापक न्यास करे। किं वा प्रणव पुटित मूलमन्त्र द्वारा सात बार अथवा पाँच बार व्यापक न्यास करे।।१४१।।

ततोऽर्घ्यस्थापनम्

स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा तत्र साधारपात्रं निधाय मूलविद्यया जलादिनापूर्य (जलमन्त्रेण जलमधिष्ठाय) रक्तचन्दन-बिल्वपत्रादीन् निःक्षिप्य अर्घ्यस्याग्नीशासुखायुषु मध्ये दिक्षु च ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः इत्यादिना 'ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः' इत्यादिना वा षडङ्गानि विन्यस्य अर्घ्यपात्रं मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य तदुपरि मूलं दशधा जपेत्।।१४२।।

अब अर्घ्यस्थापन करे। साधक अपने वाम भाग में त्रिकोण, उसके बाहर वृत्त, उसके भी बाहरी भाग में चतुष्कोण मण्डल अंकित करके उस पर आधार के साथ अर्घ्यपात्र की स्थापना करे। तत्पश्चात् 'ॐ गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्रपाठ करके इस जल का शोधन करना चाहिये और उस जल से भरे अर्घ्य पात्र में रक्त चन्दन, बिल्वपत्र आदि रखकर अर्घ्य अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य एवं वायुकोण, उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम रूपी आठों दिशाओं में 'ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः' इत्यादि प्रणाली से अर्घ्यपात्र की षडङ्ग पूजा करे। तत्पश्चात् उस पात्र को मत्स्यमुद्रा द्वारा ढक कर दश बार मूल मन्त्र का जप करना चाहिये ।।१४२।।

कालीतन्त्रे

दशकृत्वो जपेद्विद्या देवता भावसिद्धये ।।१४३।।

ततोऽस्त्रेण संरक्ष्य धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य तेजोमयं तज्जलं विभाव्य किञ्चित् प्रोक्षणीपात्रे निःक्षिप्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य पूजामारभेत्। भूतशुद्ध्यनन्तरं वा ।।१४४।।

अब अस्त्र (फट्) मन्त्र से अर्घ्यपात्र का संरक्षण करके योनि एवं धेनुमुद्रा का प्रदर्शन करके उसके जल का तेजोमय चिन्तन करके उस जल में से कुछ जल को प्रोक्षणीपात्र में लेकर इस जल द्वारा अपने देह एवं पूजा के उपकरण द्रव्यों का अभ्युक्षण करके पूजा प्रारम्भ करे।।१४३-१४४।।

तथा च फेत्कारिये

भूतशुद्धिं विधायाथ अर्घ्यादिस्थापनञ्चरेत् ।
प्राणायामं ततः कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत् ।।१४५।।

(अन्य मतानुसार)

भूतशुद्धि के तत्काल बाद अर्घ्यस्थापन, प्राणायाम तथा ऋष्यादि न्यास करे। तदनन्तर पुष्पाञ्जलि ग्रहण करके अपनी आत्मा से देवता का अभेद मानते हुये देवध्यान करना चाहिए।।१४५।।

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा,
खड्गेन्दीवरकर्तृखर्परभुजा हुङ्कारबीजोद्भवा।
खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटैकनागैर्युता,
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम्।।१४६।।

देवीध्यान इस प्रकार है— तारिणीदेवी प्रत्यालीढ़ावस्था में शवरूपी शिव के हृदय के ऊपर अपने पदद्वय को रखते हुये दण्डायमान है एवं अत्यन्त भयङ्कर उच्च स्वर से हास्य कर रही हैं। वे चारों हाथों में क्रमशः खड्ग, नीलकमल, कैंची तथा खर्पर धारण किये हुये हैं। वे 'हुं' बीज से समुत्पन्न तथा खर्वाकृति हैं। इनके मस्तक पर नीलवर्ण की अति विशाल पिंगलवर्ण की एक जटा तथा एक उग्र सर्प विराजित है। ये उग्रतारा देवी त्रिभुवन की जड़ता का विनाश करें।।१४६।।

एवं विभाव्य करकलितदूर्वाक्षतरक्तचन्दनमिलितदिनकरकिरणारुण-कुसुमाज्जलौ मातृकायन्त्रं ध्यात्वा हृदयान्मूलमन्त्रतेजोमयीं शुद्धज्ञानचैतन्यमयीं षट्चक्रभेदनेन शिरः स्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमशिवं प्रापय्य क्रियासमभिव्याहारेण तदमृताम्बुधौ विश्राम्य तदमृतलोलीभूतां चैतन्यानन्दमयीं वां प्रवहन्नासापुटादानीय मूले न कल्पितमूर्त्तावावाहयेत्।।१४७।।

तत्पश्चात् देवीध्यान करके दूर्वा, अक्षत, रक्तचन्दन मिले रविकिरणों के समान (हथेली पर रक्खे) रक्तवर्ण पुष्पाञ्जलि में मातृकायन्त्र का चिन्तन करना चाहिए और मूलमन्त्र से षट्चक्रभेद करके चैतन्यमयी देवी को शिरः स्थित सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्य में आसीन परमशिव से संयोजन कराकर सहस्रार से निकल रहे सुधासागर में स्थापन करे। तदनन्तर अमृतलोलुपा चैतन्यमयी देवी को प्रवहणशील नासपुटों द्वारा पूर्वोक्त पुष्पाञ्जलि समर्पित करके कल्पित मूर्ति में उनका आवाहन करे।।१४७।।

तन्त्रान्तरे

देवीं सुषुम्नामार्गेण चानीय ब्रह्मरन्ध्रकम् ।
वहन्नासापुटे ध्यात्वा निर्यान्तीं स्वाञ्जलिस्थिताम् ।
पुष्पे आरोप्य तत् पुष्पं प्रतिमादौ निधापयेत् ।।१४८।।

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिता भव ।।१४९।।

सुषुम्नानाड़ी पथ से देवी को ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर "ब्रह्मरन्ध्र से देवी निश्वासवाही नासापुट द्वारा बहिर्गत होकर अञ्जलि स्थित पुष्प में अवस्थित हो रही हैं"— यह चिन्तन करना चाहिए। देवी का इस प्रकार उस पुष्प में संस्थापन करके उस अञ्जलिगत पुष्प को प्रतिमा पर चढ़ाये। अब इस मन्त्र का पाठ करे—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिता भव ।।

यह पाठ करके योनी प्रभृति पञ्चमुद्रा का प्रदर्शन करे।।१४८-१४९।।

आं ह्रीं क्रों स्वाहेति प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा मूलमुच्चार्य श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहेति षोडशोपचारेण पञ्चोपचारेण वा पूजयेत्। अस्याः प्रयोगस्तु आदौ मूलं ततः एतन्मन्त्रमुच्चार्य इदं द्रव्यममुकदेवतायै नमः।।१५०।।

तदन्तर 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' मन्त्र से देवी की प्राणप्रतिष्ठा करके मूलमन्त्र का पाठ करके 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से सोलह उपचारों अथवा पाँच उपचारों से पूजा करे। जैसे 'स्त्रीं ह्रीं हुं फट् श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा इदं आसनं श्रीमदेकजटायै नमः'। इस प्रकार अन्य शेष उपचारों में इसी प्रकार से मन्त्रयोजन करके पूजन करना चाहिये ।।१५०।।

तथा च फेत्कारिण्याम्

श्रीमदेकजटे उक्त्वा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ च ।
तारादिवह्निजायान्तमुदीर्य यजनं चरेत् ।।१५१।।

तारः कूर्चं तदादि हुं फडित्यर्थः। स च वह्निजायान्तश्चेति। कस्याञ्चित् प्राचीनपद्धतौ– ॐ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा पाद्यं नमः ।।१५२।।

किसी प्राचीन पद्धति में वाक्य रचना प्रकारान्तर से भिन्न है। यह मत भगवान् विद्याधराचार्य-सम्मत है। उनके अनुसार इस प्रकार पूजन करे—

ॐ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा पाद्यं नमः।।१५१-१५२।।

ॐ तारिणी ह्रीं हं ह्रीं इदमाचमनीयं स्वधा ।
ॐ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे इदमर्घ्यं स्वाहा ।।
ॐ ह्रीं कपालिके मधुपर्कः स्वधा ।
श्रीमदेकजटे इदमाचमनीयं सुगन्धिजलं नमः ।।१५३।।

'ॐ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा पाद्यं नमः'— पाद्य निवेदन करे।

'ॐ तारिणी ह्रीं इदमाचमनीयं स्वधा'— आचमनीय प्रदान करे।

'ॐ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे इदमर्घ्यं स्वाहा'— अर्घ्य प्रदान करे।

'श्रीमदेकजटे इदमाचमनीयं सुगन्धिजलं नमः'— सुगन्धिजल प्रदान करे।।१५३।।

(गन्धपुष्प इस प्रकार निवेदित करे)

ॐ परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि ।।१५४।।

श्रीमदेकजटे एष गन्धो नमः । एवं

ॐ तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम् ।
आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतां परमेश्वरि ।।१५५।।
प्रणवं भगवत्येकजटे माया ततः परम् ।
विशुद्धधर्मगात्रितः सर्वपापानि तत्परम् ।।१५६।।

शमय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् शिरः ।
अयं पाद्यमनुर्देवि आचमनीयमनु शृणु ।।१५७।।
तारं वज्रिणि मायेति तारो माया ततः परम् ।
मणिधरि वज्रिणीति महाप्रतिसरे मनुः ।।
माया कपालिके मन्त्रो मधुपर्कें सुरेश्वरि ।।१५८।।

अन्य प्रकार से 'ऊँ परमानन्दसौम्यपरिपूर्णदिगन्तरम्, गृहाण परम गन्धं कृपया परमेश्वरी श्रीमदेकजटे एष गन्धो नमः' कहकर गन्ध अर्पण करे।

तथा पुष्पार्पण हेतु 'ऊँ तुरीयवनसम्भूतनानागुणमनोहरं आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतां परमेश्वरी' कहकर पुष्पार्पण करे।

तारिणी निर्णय के अनुसार 'ऊँ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमयं सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से पाद्य प्रदान करे। 'ऊँ तारिणी ह्रीं' द्वारा आचमनीय प्रदान करे। 'ऊँ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिजटे' द्वारा अर्घ्य प्रदान करे। 'ह्रीं कापालिके' द्वारा मधुपर्क प्रदान करे।।१५४-१५८।।

ततो योनिमुद्रां प्रदर्श्य देवि आज्ञापय भगवत्याः पूज्यामीति प्रार्थ्यावरणान् पूजयेत् ।।१५९।।

तत्पश्चात् योनिमुद्रा प्रदर्शन करके देवी की आज्ञा लेकर आवरण देवताओं का पूजन करे।।१५९।।

तद्यथा—

केशरेश्वग्नीशासुरवायुषु मध्ये दिक्षु च षडङ्गानि पूजयेत् ।।१६०।।

अग्नि, ईशान, वायु नैऋत्य तथा चारों दिशा — इन कोणचतुष्टय की पूजा करे।।१६०।। यथा —

ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः ।
ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा ।
ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट् ।
ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुम् ।
ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट् ।
चतुर्दिक्षु ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट् ।।१६१।।

('ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः' इत्यादिना षडङ्गानि सम्पूज्य) देव्या मौलौ अक्षोभ्यवज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेणाक्षोभ्यं पूजयेत् ।।१६२।।

(अन्य मतानुसार 'ह्रीं अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः' इत्यादि से षडङ्गपूजन करके) देवि की मौलि में 'ॐ अक्षोभ्यवज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा अक्षोभ्यऋषये नमः' मन्त्र से अक्षोभ्य ऋषि का पूजन करना चाहिए।।१६१-१६२।।

ततः पीठस्योत्तरे वायव्यादीशानपर्यन्तं गुरुपङ्क्तिः पूजयेत्। यथा ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहेति ।।१६३।।

पीठ के उत्तर वायुकोण में 'ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से पूजन करे।।१६३।।

वज्रपुष्पं प्रतीच्छेति हुं फट् स्वाहेति मन्त्रतः ।
एतन्मन्त्रे नाममात्रं भिन्नञ्चैव न संशयः ।।
अनेन मनुना सर्वान् परिवारान् समर्चयेत् ।।१६४।।

एवं व्योमकेशानन्दनाथ-नीलकण्ठानन्दनाथ-वृषध्वजानन्दनाथान् पूजयेत्, एते दिव्यौघाः।।१६५।।

नैऋत्यकोण में 'व्योमकेशानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा,' द्वारा,

अग्निकोण में 'नीलकण्ठानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' द्वारा,

ईशानकोण में 'वृषध्वजानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' द्वारा पूजन करे। ये दिव्यगुरु हैं।।१६४-१६५।।

वशिष्ठानन्दनाथ-कूर्मनाथानन्दनाथ-मीननाथानन्दनाथ-महेश्वरानन्दनाथ-हरिनाथानन्दनाथान् पूजयेत्। एते सिद्धौघाः।।१६६।।

तदनन्तर वायुकोण में— 'वशिष्ठानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' द्वारा,

नैऋत्यकोण में— 'मीननाथानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' द्वारा,

अग्निकोण में— महेश्वरानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' द्वारा,

ईशानकोण में— हरिनाथानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' द्वारा सिद्धौघ गुरु की अर्चना करे।।१६६।।

एवं तारावत्यम्बाभानुमताम्बाजयाम्बाविद्याम्बा महोदर्याम्बा-सुखानन्दनाथपरानन्दपारिजातानन्दनाथकुलेश्वरानन्दनाथविरूपाक्षानन्दनाथ-फेरण्यम्बां पूजयेत्। एते मानवौघाः।।१६७।।

अब—

तारावत्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
भानुमत्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
जयाम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
विद्याम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
महोदर्याम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
सुखानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
परानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
पारिजातानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
कुलेश्वरानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
विरूपाक्षानन्दनाथ वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा ।
फेरण्यम्बा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।
का पूजन करे। ये मानवौघ गुरु हैं ।।१६७।।

अशक्तश्चेदक्षोभ्यमात्रं पूजयेत्। मम मौलिस्थितं देवमवश्यं परिपूजयेत् ।।१६८।।

इन सबकी पूजा में अशक्त होने वाला केवल अक्षोभ्य का पूजन करे। देवी कहती हैं कि मेरे शिरस्थित अक्षोभ्य की पूजा अवश्य करे।।१६८।।

महाकाल्याथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च ।
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।
अष्टमी भैरवी प्रोक्ता योगिनीस्ताः प्रपूजयेत् ।।१६९।।

अब पूर्वादिदल के मूल में महाकाली, रुद्राणी, उमा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि तथा भैरवी रूपी आठ योगिनियों का पूजन करे।।१६९।।

ततः पूर्वादिचतुर्दले वामावर्त्तेन वैरोचनशङ्खपाण्डवपद्मनाभानसिताभान् पूजयेत्।

अग्न्यादिकोणदलेषु नामकमामकपाण्डवतारकान् पूजयेत्। पूर्वादि-द्वार-चतुष्टयेषु वामावर्त्तेन पद्मान्तकयमान्तकविघ्नान्तकनरकान्तकान् वज्रपुष्पमित्यादिना पूजयेत् ।।१७०।।

तदनन्तर पूर्वादि चतुर्दल में वामवर्त्त से वैरोचन, पाण्डव, पद्मनाभ तथा असिताभ का पूजन करे।

तदनन्तर अग्नि आदि चतुष्कोण में अवस्थित नामक, मामक, पाण्डव तथा तारक की अर्चना करके पूर्व आदि चारों द्वारों पर वामावर्त्त क्रम से पद्मान्तक, यमान्तक, विघ्नान्तक तथा नरकान्तक की पूजा करे। इन सबकी पूजा करते समय इनके नाम को लेकर उसके आगे 'वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' लगाना चाहिए।।१७०।।

बलिदानम्

पूजान्ते भोजनादौ च बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।।१७१।।

तत्र क्रमः– स्ववामे त्रिकोणवृत्तचतुरस्त्रमण्डलं कृत्वा पुष्पैस्तमभ्यर्च्य तत्र विहितबलिद्रव्यभरितं साधारं निधाय तद्वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां धृत्वा 'ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृहाण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकृष्य क्रट क्रट छिन्धि छिन्धि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा' इति त्रिः पठित्वा बलिं दद्यात्।।१७२।।

अब तारादेवी के समक्ष बलिदान प्रक्रिया कहते हैं। पूजा के अन्त में भोजन-द्रव्य निवेदन के पूर्व मन्त्रपाठ द्वारा बलि देना चाहिए। क्रम यह है — साधक अपने बायीं ओर त्रिकोण वृत्त तथा चतुरस्त्रयुक्त मण्डल निर्मित करे। इसका अर्चन पुष्प द्वारा करके इस मण्डल पर विहित बलिद्रव्य द्वारा भरे साधारपात्र का स्थापन करे। इस बलिपात्र को बायें हाथ के अंगूठे एवं अनामिका से छूते हुये "ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृहाण गृहाण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकष्य क्रट क्रट छिन्धि छिन्धि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा" का तीन बार उच्चारण करके बलि निवेदन करे।।१७१-१७२।।

तथा च सिद्धसारस्वते

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हल्लेखाञ्च ततः परम्।
एकजटे पदान्ते च महाशब्दमुदीरयेत् ।।१७३।।

यक्षादिपदमाभाष्य पतये पदतो मया।
उपनीतं पदं चोक्त्वा बलिगृह्णेति च द्विधा।।१७४।।

गृहणापय द्विधा प्रोक्त्वा मम सर्वपदं तथा।
शान्तिं कुरु पदद्वन्द्वं परविद्यामनन्तरम्।।१७५।।

द्विधाकृष्येति च ब्रूयात् क्रट छिन्धीति च द्विधा।
सर्वादि च ततो जगद्वशमानय शब्दतः।
मायया स्वाहया युक्तो मन्त्रो बलिविधौ स्मृतः।।१७६।।

ततो रहस्यमालया निगदेनोपांशुना मानसेन वा अष्टोत्तरसहस्रं शतं वा जपेत्।।१७७।।

अन्य मत से मन्त्रोद्धार इस प्रकार है। प्रथमतः प्रणव (ॐ) मायाबीज (ह्रीं) तदनन्तर 'एकजटे' लगाकर 'महा' शब्द का उच्चारण करे। तदनन्तर यक्षादि का उच्चारण करके 'पतये' कहे और 'मायोपनीतं बलिं गृहाण बलिं गृहाण'' का उच्चारण करके 'गृह्णापय गृह्णापय' कहे। इसके पश्चात् 'मम सर्वशान्ति' कहकर 'आकृष्य आकृष्य' कहे। तत्पश्चात् 'क्रट क्रट छिन्धि छिन्धि' कहकर 'सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा' कहे। यह बलिदान मन्त्र है।

इसके पश्चात् रहस्यमाला द्वारा वाचिक, उपांशु किं वा मानसिक प्रकार से १०८ अथवा १००८ बार जप करे। इससे कम जप कदापि न करे।।१७३-१७७।।

तत्र जपरहस्यं यथा– मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकेषु यथाक्रमं बीजत्रयव्याप्तिं तडित्कोटिभास्वरां परस्परानुस्यूतां विभाव्य सर्वतेजोमयं फट्कारं विश्रान्तिमयं हृदि ध्यात्वा उच्चरेत्।।१७८।।

तारादेवी के मन्त्रजप की क्रमप्रणाली इस प्रकार है— मूलाधार, स्वाधिष्ठान तथा मणिपूर में क्रमशः ह्रीं स्त्रीं हुं (मूलाधार में ह्रीं, स्वाधिष्ठान में स्त्रीं और मणिपूर में हुँ) बीज कोटिविद्युत् के समान समुज्ज्वल रूप से परस्पर गुथा हुआ व्याप्त है। इस भावना का चिन्तन करके सर्वतेजोमय विश्रान्तिरूप 'फट्' मन्त्र का अन्त में जप करे।।१७८।।

नीलतन्त्रे

मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि जपात् सर्वज्ञदायकम् ।
मन्त्रध्यानान्महेशानि शुद्ध्यते ब्रह्महा यतः ।।१७९।।

मूलचक्रे तु हृल्लेखां सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
स्वाधिष्ठाने पीतवर्णं द्वितीयन्तु विभावयेत् ।।१८०।।

अन्य मतानुसार कहा जा रहा है। ध्यान करके मन्त्रजप करने से सर्वज्ञत्व प्राप्त होता है। हे महेश्वरि ! मन्त्रध्यान करने वाला ब्रह्महत्यादिक पाप से मुक्त हो जाता है। मूलाधार में कोटिसूर्य के समान प्रभा से युक्त 'ह्रीं' बीज है। स्वाधिष्ठान में पीतवर्ण 'स्त्रीं' बीज है।।१७९-१८०।।

नाभौ जीमूतसङ्काशं कूर्चबीजं महाप्रभम् ।
अस्त्रबीजं हृदि ध्यायेत् कालाग्निसदृशप्रभम् ।।१८१।।

मूलादिब्रह्मरन्ध्रे तु सर्वां विद्यां विभावयेत् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां योगिभिर्दृष्टपूर्विकाम् ।।१८२।।

एवं यथाशक्ति जप्त्वा जपसमर्पणादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत् ।

नाभि (मणिपूर) में मेघवर्ण युक्त 'हुं' बीज तथा हृदय में कालाग्निसदृश प्रभायुक्त 'फट्' बीज का चिन्तन करके मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त सभी चक्र में कोटिसूर्य के समान ज्योतिष्मती योगिजनमात्र द्वारा लक्षित होने वाली मूलदेवता की भावना या ध्यान करते-करते मूलमन्त्र का जप करे। इस प्रकार से शक्ति के अनुसार जप करके जप समर्पण करे।।१८१-१८२।।

ततश्चार्घ्योदकेनैव देव्याश्च वामहस्तके ।
जपं समर्पयेद्धीमान् गुह्यातिगुह्यमन्त्रकैः ।।१८३।।

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः ।

अब अर्घ्य के जल को अपनी दाहिनी हथेली पर रखकर यह भावना करे कि देवी की बायीं हथेली पर मन्त्रजप का समर्पण किया जा रहा है। एक लाख जप द्वारा इसका पुरश्चरण होता है।।१८३।।

एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्षमनन्यधीः ।
रहस्यमालामादाय लक्षमेकं सदा जपेत् ।।१८४।।

हविष्यान्न का भोजन करने वाला साधक अनन्य चित्त होकर रहस्य माला द्वारा एक लक्ष जप करे।।१८४।।

रहस्यमाला यथा

अकस्माद्विहिता सिद्धिर्म्महाशङ्खाख्यमालया।
पञ्चाशन्मणिभिर्माला निर्मिता सर्वसिद्धिदा।।१८५।।

महाशङ्खमाला (मनुष्य के ललाट की हड्डी से बनी माला) रहस्य-माला से शीघ्र मन्त्र सिद्ध होता है। इसमें ५० मणियाँ होती हैं।।१८५।।

कान्तेन रचिता सिद्धिर्महाशङ्खाख्यमालया।।१८६।।

प्रवालादि ५० मणि द्वारा निर्मित माला से जप करने से सभी सिद्धि प्राप्त होती है।।१८६।।

महाशङ्खाभावे स्फाटिकी माला कर्त्तव्या।।१८७।।

महाशङ्ख की माला के अभाव में स्फटिक की माला से जप करना चाहिए।।१८७।।

तन्त्रान्तरे

नृललाटास्थिखण्डेन रचिता जपमालिका।
महाशङ्खमयी माला ताराविद्याजपे प्रिया।।१८८।।
कर्णनेत्रान्तरस्थास्थि महाशङ्खः प्रकीर्तितः।
तुलसीगोमयस्पृष्टं तथा गङ्गोदकेन च।
अस्पृश्यं तच्च जानीयात् शालग्रामशिलादिभिः।।१८९।।

अन्यत्र कहा गया है कि मनुष्य के ललाट की हड्डी से निर्मित माला ही महाशङ्खमाला है। ताराविद्या के जप के लिए यही उत्तम माला है। कान तथा नेत्र के बीच की हड्डी को महाशङ्ख कहते हैं। इस माला का स्पर्श तुलसी, गोबर, गङ्गाजल तथा शालग्राम शिला से नहीं कराना चाहिए।।१८८-१८९।।

मत्स्यसूक्ते

कुल्लूकां यो न जानाति महामन्त्रं जपेन्नरः।
पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुलो भवेत्।।१९०।।

विज्ञजन कहते हैं कि तारामन्त्र के जप में कुल्लूका (त्र्यक्षरा विद्या) का ज्ञान आवश्यक है। जो कुल्लूका जाने बिना तारा मन्त्र जप करता है, उसकी मृत्यु हो जाती है, अथवा उन्मत्त हो जाता है।।१९०।।

मायातन्त्रे

कुल्लूकां धारयेच्छीर्षे लिखित्वा भूर्ज्जपत्रके ।
राजद्वारे सभायाञ्च विजयी भवति ध्रुवम् ।।१९१।।इति।

जो व्यक्ति कुल्लूका मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर मस्तक पर धारण करता है, वह राजद्वार में तथा सभा में अवश्य विजयी होता है।।१९१।।

एवमुक्तेन जप्त्वा तु तद्दशांशेन होमयेत् ।
तर्पणञ्चाभिषेकञ्च दशाशं विप्रभोजनम् ।।१९२।।
तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकारमिहोच्यते ।।१९३।।

पूर्वोक्त क्रम से जप करके (एक लाख), उसके १/१० का होम करे। होम का दशांश तर्पण, तर्पण का १/१० अभिषेक एवं अभिषेक का १/१० ब्राह्मण भोजन कराये।।१९२-१९३।।

सिद्धसारस्वते

एवं जपं पुरा कृत्वा दशांशमसितोत्पलैः ।
आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री तद्दशांशेन तर्पणम् ।।१९४।।

जप की संख्या के १/१० संख्या से बिल्वपत्र को घृत में भिगों कर अथवा उतने नीलकमल द्वारा होम करे। १/१० संख्यक तर्पण चन्दन मिश्रित सुगन्धि जल से करे।।१९४।।

एवं जपं पुरा कृत्वा दशांशमसितोत्पलैः ।
आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री बिल्वैर्वा जुहुयात्ततः ।।१९५।।
कालागुरुदूर्बोपेतैर्विमलैर्गन्धवारिभिः ।
तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकारमिहोच्यते ।।१९६।।
जले चावाह्य विधिवत् पाद्याद्यैरुदकात्मकैः ।
सन्तर्प्य विधिवद्देवीं परिवारान् सकृत् सकृत् ।।१९७।।

अन्य मतानुसार जप के अन्त में (एक लाख जप के अन्त में) १० हजार संख्यक बिल्वपत्र में घी लगाकर अथवा १० हजार संख्यक नीलकमलों को लेकर होम करे। तदनन्तर १ हजार तर्पण काला अगुरु अथवा चन्दन मिश्रित जल से करे। जल में विधिवत् देवी का आवाहन करके केवल जलरूप पाद्यादि उपहार से पूजा करे। तदनन्तर विहित विधि-विधान से मूलदेवी (तारादेवी) का तर्पण करके उनके पारिवारिक देवगण के लिए भी एक एक बार तर्पण करे।।१९५-१९७।।

अभिषेकः

देवीबुद्ध्या स्वमात्मानं सम्पूज्य साधकोत्तमः ।
तारिणीं सिञ्चयामीति जलं मूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ।।१९८।।

इसके बाद अभिषेक करना चाहिए। अपनी आत्मा में देवी की भावना करके 'तारिणीमभिषिञ्चामि' मन्त्र द्वारा अपने मस्तक पर जल छिड़के ।।१९८।।

मन्त्रभेदाः

एकवीराकल्पे

लिखेत् खं कूर्चसंयुक्तं रौद्रं त्रैगुण्यमेव च ।
विधिविष्णुमहेशानां स्वशक्त्या क्रमयोगतः ।
एषा विद्या महाविद्या सर्वसिद्धिप्रदा मता ।।१९९।।

तदनन्तर तारादेवी का मन्त्रावली कहते हैं। खं, कूर्चबीज (हुं), प्रासादबीज (हौं), प्रणव (ऊँ), वाग्बीज (ऐं), श्रीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं) अर्थात् 'खं हुं हौं ऊँ ऐं श्रीं ह्रीं' मन्त्र द्वारा देवी की आराधना करने से समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।।१९९।।

ऋद्धिसंज्ञं समुद्धृत्य बिन्दुनादविभूषितम् ।।२००।।इति वचनात्।

इस मन्त्र से सर्वसिद्धि प्राप्त होती है। इस मन्त्र का ध्यान, पूजा तथा पुरश्चरण प्रणाली पूर्ववत् है।।२००।।

प्रणवं भुवनेश्वरीं हां कूर्चबीजं नमस्ताराये सकलदुस्तरं तारय तारय प्रणवयुग्मं वह्निजाया।।२०१।।

तारादेवी का अन्य मन्त्र यथा प्रणव (ऊँ), मायाबीज (ह्रीं), हकार में आकार (हां) तथा बिन्दुयोग से जो बीज उत्पन्न होता है, वह कूर्चबीज (हुँ) तथा स्वाहा अर्थात् 'ऊँ ह्रीं हां हुं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ऊँ ऊँ स्वाहा' इस मन्त्र से देवी पूजा की जाती है।।२०१।।

नीलतन्त्रे

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत् ।
गगनं शेषसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम् ।।२०२।।
कूर्चबीजञ्च हृदयं तारायै च समुद्धरेत् ।
सकलदुस्तरं तारय तारयेति ततः पुनः ।।२०३।।
तारायुग्मं वह्निजाया मन्त्रोऽयं सुरपादपः ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाहरेत् ।।२०४।।

अस्य पुरश्चरणं चतुर्लक्षजपः ।।२०५।।

अन्य मतानुसार प्रणव (ऊँ) हकार में आ तथा बिन्दु (हां) कूर्चराज (हुं) नमः तारायै सकलदुस्तरं तारय मन्त्र बनता है। अर्थात् "ऊँ ह्रीं हां हुं नमः तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ऊँ ऊँ स्वाहा' मन्त्र है। यह कल्पवृक्षरूप है। इसका पहले लिखी प्रणाली से ही ध्यान पूजनादिक करे। चार लाख जप इसका पुरश्चरण होता है। इसकी आराधना करने से अष्ट ऐश्वर्य प्राप्त होता है।।२०२-२०५।।

मायातन्त्रे

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा नीला सरस्वती ।
कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी स्मृताः ।।२०६।।

तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी एवं भद्रकाली ये अष्ट तारिणी मूर्तियाँ हैं।।।२०६।।

ऊष्मवर्णगतो जीवो निगमस्वरसंयुतः ।
नादबिन्दुसमाक्रान्तस्तत्त्वरश्मिसमन्वितः ।।२०७।।
कपिलो वामकर्णस्थो नादाढ्यो बिन्दुशेखरः ।
पार्श्वान्तञ्च तथा ज्ञान्तं शरान्तं परिकीर्तितम् ।।२०८।।

मध्यादिमायाकवचं द्वितीयं मन्त्रमुद्धृतम् ।
विपरीतं त्रिधा ज्ञेयं कूर्चाद्यञ्च तुरीयकम् ।।२०९।।
मायादिकवचान्तञ्च पञ्चमं परिकीर्तितम् ।

इनके मन्त्र आठ प्रकार के हैं — अजीव (ह) इसमें ऊष्मवर्ण (र), निगमस्वर (ई) एवं बिन्दुयोग से जात अर्थात् उत्पन्न बीज अर्थात् मायाबीज (ह्री), वधूबीज (स्त्रीं), कूर्चबीज (हूं) अन्त में फट् अर्थात् 'ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' यह तारामन्त्र है।

इस मन्त्र के मध्यवर्ण को आदि में स्थापन करने पर अर्थात् स्त्रीबीज (स्त्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कूर्चबीज (हुं)। तत्पश्चात् 'फट्' मिलाने से द्वितीय मन्त्र 'स्त्रीं ह्रीं हुं फट्'' की उत्पत्ति होती है। यह उग्रातारिणी मन्त्र है।

कूर्चबीज (हुं) स्त्रीबीज (स्त्रीं) मायाबीज (ह्रीं) तथा फट् को मिलाने से 'हुं स्त्री ह्रीं' रूपी तृतीय मन्त्र की उत्पत्ति होती है। यह महोग्रा मन्त्र है।

कूर्चबीज (हुं) मायाबीज (ह्रीं) स्त्रीबीज (स्त्रीं) तथा फट् को मिलाने से 'हुं ह्रीं स्त्रीं फट्'' रूपी चतुर्थ मन्त्र की उत्पत्ति होती है। यह वज्रा मन्त्र है।

मायाबीज ह्रीं, मध्य में स्त्रीबीज (स्त्रीं) तब फट् तथा अन्त में कूर्चबीज (हुं) के योग से पञ्चम मन्त्र की उत्पत्ति होती है। यथा 'ह्रीं स्त्रीं फट् हुं'। यह नीलमन्त्र है।।२०७-२०९।।

मायामध्यगतं षष्ठं द्वितीयान्तञ्च सप्तमम् ।
अष्टमं कवचं मध्यमेकं भेदाष्टकं भवेत् ।।२१०।।

मायाबीज (ह्रीं) फट् तथा कूर्चबीज (हुं) से ह्रीं फट् हुं' रूपी सरस्वती का मन्त्र उत्पन्न होता है। यह षष्ठ मन्त्र है। मायाबीज (ह्रीं) कूर्चबीज (हुं) स्त्रीबीज (स्त्रीं) तथा फट् अर्थात् 'ह्रीं हुं स्त्रीं फट्' रूपी सप्तम मन्त्र कामेश्वरी का है।

स्त्रीबीज (स्त्रीं), कूर्चबीज (हुं) मायाबीज (ह्रीं) तदनन्तर फट् लगाने से अर्थात् 'स्त्रीं हुं ह्रीं फट्' यह अष्टम मन्त्र भद्रकाली का बनता है।।२१०।।

ऋषिः स्यादष्टकश्छन्दोऽनुष्टुप् च देवता तथा ।
शम्भुपत्नी महेशानि चतुर्वर्गेषु योजयेत् ।।२११।।
काललक्षं जपेन्मन्त्रमेवमुक्तेन वर्त्मना ।
ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाचरेत् ।।२१२।।

इन सभी मन्त्र के आठ ऋषि हैं, छन्द अनुष्टप् है, शम्भुपत्नी देवता हैं। इन मन्त्रों का विनियोग (प्रयोग) होता है धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष साधनार्थ। इन सभी का छः लक्ष जप का नियम है। पूर्वोक्त प्रणाली से इनकी साधना करना चाहिए।।२११-२१२।।

त्र्यक्षरस्यैव भेदोऽयं फटौ यत्र न तत्र वै।
जपो तु त्र्यक्षरं ज्ञेयं न्यासे सर्वं प्रतिष्ठितम्।।२१३।।

इन पञ्चाक्षर मन्त्रों में फ तथा ट् वर्णद्वय का परित्याग करके 'ह्रीं स्त्रीं हुं' रूपी त्र्यक्षर मन्त्र बचता है। जप में त्र्यक्षर तथा न्यासादि अन्यान्य कार्य में पञ्चाक्षर मन्त्र विहित है।।२१३।।

गान्धर्वतन्त्रे

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तारे तु तारे तथा।
तत्ता स्वाहेति मन्त्रोऽयं दशाक्षर उदाहृतः।।२१४।।

तारादेवी का अन्य एक मन्त्र है। गन्धर्वतन्त्र के अनुसार प्रथमतः 'ॐ लगायें तदनन्तर 'तारे तु तारे तत्तो स्वाहा' लगायें अर्थात् ''ॐ तारे तु तारे तत्तो स्वाहा''। यह दशाक्षर मन्त्र है।।२१४।।

स्वतन्त्रतन्त्रे

श्यामवर्णां त्रिनयनां द्विभुजां वरपङ्कजे।
दधानां बहुवर्णाभिर्बहुरूपादिरावृताम्।।२१५।।
शक्तिभिः स्मेरवदनां स्मेरमौक्तिकभूषणाम्।
रत्नपादुकयोर्न्यस्तपादाम्बुजयुगां स्मरेत्।।२१६।।

देवी का ध्यान इस प्रकार से है—

वे श्यामवर्णा हैं, त्रिनयन युक्ता, द्विभुजा हैं, जिनके एक हाथ में वरमुद्रा है, दूसरा पद्मयुक्त है। चारों ओर नानावर्ण युक्ता अनेक रूप धारण करने वाली शक्तियाँ उनको घेर कर स्थित हैं। उनके मुख पर हास्य है। वे उज्ज्वल मुक्ता के आभूषणों से युक्त हैं। उनके पादपद्म रत्ननिर्मित पादुका पर स्थित है। ऐसी देवी का स्मरण करना चाहिए।।२१५-२१६।।

अस्या पूजादिकं पूर्ववत् कार्यम्। पुरश्चरणन्तु दशलक्षजपः ।।२१७।।

इनका पूजन पूर्ववत् करे। दस लक्ष जप से पुरश्चरण होता है।।२१७।।

वर्णलक्षं जपेद्धीमान् नियमेन यथाविधि।
दशांशं जुहुयान्मन्त्री घृताक्तै रक्तपुष्पकैः ।।२१८।।

बुद्धिमान् साधक दस लाख जप समाप्त करके घृतमिश्रित एक लाख लाल पुष्पों से होम करे।।२१८।।

तन्त्रान्तरे

लज्जायुगं वधूबीजं ततो दीर्घतनुच्छदम्।
सारस्वतोऽपरो मन्त्रः सम्प्रोक्तश्चतुरक्षरः ।।
तदन्ते यदि फट्कारो मनुः पञ्चाक्षरो भवेत् ।।२१९।।

अन्य मत से 'ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हुं' चतुरक्षर मन्त्र कहा गया है। इसमें 'फट्' लगा देने पर (अर्थात् ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हुं फट्) यह पञ्चाक्षर हो जाता है।।२१९।।

तारशक्तिवधूबीजान्यन्ते दीर्घतनुच्छदम्।
अस्त्रमग्निवधूरन्ते मनु सप्ताक्षरो भवेत् ।।२२०।।

'ॐ ह्रीं हुं फट् स्वाहा' से सप्ताक्षर मन्त्र गठित होता है।।२२०।।

(तार=ॐ) (शक्ति=ह्रीं) (वधूबीज-स्त्रीं)

मन्त्रमात्रेष्वयं प्रोक्तस्तथा दीर्घेण वर्मणा।
पुटितञ्च वधूबीजमपरोऽसौ गुणाक्षरः ।।२२१।।

स्त्रीबीज को कूर्चबीज (हुं) द्वारा पुटित करने पर एक त्र्यक्षर मन्त्र सृष्ट होता है 'हुं स्त्रीं हुं''।।२२१।।

रहस्यपुरश्चरणं यथा

अशक्तानाञ्च मे देव पुरश्चरणमुच्यताम्।
अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमुच्यते ।।२२२।।

देवी जिज्ञासा करती हैं— हे देव ! अशक्त व्यक्ति कैसे पुरश्चरण कर सकेगा? उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं— हे देवी! अब एक अन्य प्रकार का पुरश्चरण कहता हूँ।।२२२।।

कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम्।
पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विशेषतः।
निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्धमानतः कानने वने।।२२३।।
तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि मानतः।
एकाकी प्रजपेन्मन्त्री सः भवेत् कल्पपादपः।।२२४।।

मङ्गल अथवा शनिवार को एक नरमुण्ड ले आये। उसे पञ्चगव्य से गीला करे तथा उस पर चन्दन का लेपन करके किसी वन में आधा हाथ जमीन में गाड़ दे। इस दिन रात्रि में एकाकी बैठकर १००० जप करने मात्र से पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है। ऐसा पुरश्चरण साधक के लिए कल्पवृक्ष के समान है।।२२३-२२४।।

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते।
शवमानीय तद्वारे तेनैव परिखन्यते।।२२५।।
तद्दिनात्तद्दिनं यावत्तावदष्टोत्तरं शतम्।
स भवेत् सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा।।२२६।।

अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहा जा रहा है। शनि अथवा मङ्गल को एक शव लाकर वन में आधा हाथ गढ़ा खोदकर गाड़ देना चाहिए और रात्रि में उस पर बैठकर जप करे। जिस दिन प्रथम जप आरम्भ करे, उस दिन से लेकर आठ दिन तक रोज १०८ बार जप करे। इससे आठवें दिन पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है। इससे साधक को समस्त सिद्धि मिल जाती है। यह निःसन्दिग्ध है।।२२५-२२६।।

रहस्यपुरश्चरणं यथा

अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते।
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि।।२२७।।
सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योदयान्तरम्।
तावज्जप्त्वा निरातङ्क सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्।।२२८।।

अन्य प्रकार से शुक्ल अथवा कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को सूर्योदय से प्रारम्भ करके अगले दिन के सूर्योदय तक भय रहित होकर जप करना चाहिए। इससे एक पुरश्चरण हो जाता है और साधक अणिमादि सिद्धि का अधिकारी बन जाता है।।२२७-२२८।।

शरत्काले चतुर्थ्यादि नवम्यन्तं विशेषतः ।
भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत् सहस्रकम् ।।२२९।।
जपेदेकाकी विजने केवलं तिमिरालये ।
अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् ।।२३०।।

अन्य प्रकार का पुरश्चरण कहते हैं— जैसे शरत् काल की चतुर्थी से नवमी पर्यन्त रात्रि में भक्तिपूर्वक देवी की पूजा के अन्त में (विशेषतः अष्टमी तथा नवमी को उपवास रहकर) एकाकी निर्जन जनशून्य अन्धकार युक्त गृह में प्रतिदिन १००० जप करने से पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है।।२२९-२३०।।

मुण्डमालातन्त्रे

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत् कृष्णाष्टमी भवेत् ।
सहस्रसंख्यजप्तेन पुरश्चरणमिष्यते ।।२३१।।
कृष्णां चतुर्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे ।
अष्टमीनवमीरात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः ।।२३२।।
दशम्यां पारणं कुर्यान्मत्स्यमासांदिभिर्युतम् ।
षट् सहस्रं जपेन्नित्यं भक्तिभावपरायणः ।।२३३।।
चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी ।
तावज्जप्ते महेशानि पुरश्चरणमिष्यते ।
केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धा भवन्ति हि ।।२३४।।
सूर्योदयं समारभ्य यावत् सूर्योऽस्तगो भवेत् ।
तावज्जप्त्वा महेशानि पुरश्चरणमिष्यते ।।२३५।।

।। इति एकजटातारासाधनतन्त्रं सम्पूर्णम् ।।

कृष्णा अष्टमी से प्रारम्भ करके पुनः कृष्णाष्टमी पर्यन्त प्रतिदिन १००० मन्त्र जप करे। इससे पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है। कृष्णा चतुर्दशी से महानवमी पर्यन्त प्रतिदिन देवी पक्ष के ठीक पहले मन्त्र जप करे तथा महाष्टमी तथा महानवमी की रात्रि में उपवासी होकर विशेषरूप से देवी की पूजा करके दशमी को मत्स्य-मांस द्वारा पारण करे। इस पुरश्चरण काल में भक्तिपूर्वक प्रतिदिन ६००० मन्त्र का

जप करे। इस प्रकार केवल जप से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। अन्य प्रकार से पुरश्चरण कहा जाता है। चतुर्दशी से प्रारम्भ करके अगली चतुर्दशी पर्यन्त नित्य एक हजार जप करना भी पुरश्चरण है। इसमें होमादि की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

हे देवि! इसके अतिरिक्त सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त जप करने से भी पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है।।२३१-२३५।।

।। इस प्रकार एकजटातारासाधनतन्त्र पूर्ण हुआ ।।

❋❋❋